॥ श्रीः ॥

ऋषिवरघेरण्डयोगीश्वरविरचिता

घेरण्डसंहिता ।

(योगशास्त्रम्)

श्रीमथुरास्थदक्षगोत्रोद्भवचातुर्वेदिशर्मश्री ५ पण्डि-
तकल्याणचन्द्रात्मजराधाचंद्रभिषग्विरचित-
व्रजभाषाभाष्यनामकव्रजभाषानुवाद-
विभूषिता ।

सा च

श्रीकृष्णदासात्मज-गङ्गाविष्णुना

स्वकीये "लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालये

मुद्रयित्वा प्रकाशिता ।

संवत् १९८१, शकाब्दाः १८४६,

कल्याण-मुंबई.

॥ श्रीः ॥

प्रस्तावना ।

एक चंडकापालि नामक भूपतिने जगत्के हितार्थ एक समय सर्व ऋषिशिरोमणि योगेश्वर श्रीमहाराज घेरण्डजीकी कुटीमें जाकर कहा कि हे प्रभो ! आप कृपाकरके मुझको योगशास्त्रका उपदेश करो यह राजाके वचन सुनकर हर्षपूर्वक कृपानिधि बोले कि हे राजन् ! मैं तोको महागुप्त जो योग है ताकों सर्व विधिसहित कहो हों तामें सप्त उपदेश हैं तामें सर्व योगवर्णन कियो और बहुत ललित मनोहर श्लोकोंमें कह्यो यह ग्रंथ आजतक प्रसिद्ध नहीं है और व्याकरणरहितोंको तो महादुर्लभ है परंतु यह ग्रंथ मुक्तरूप तथा आकाशादि गमन स्वदेहसों देवेवारो है यह देखकर श्रीमथुराजी निवासी चारों संप्रदायि वामन राजादिके गुरु बडे चौबे श्री १०८ पंडितवर्य कल्याणचंद्रात्मज राधाचंद्र भिषग्वरने व्रजभाषाभाष्य नामक व्रजभाषाटीका कर मोको दीनी मैंने सर्वोपयोगी तथा योगाभिलाषियोंके हितार्थ अपने निज लक्ष्मीवेंकटेश्वर छापेखानेमें बहुत सचिक्कण ग्लेज कागजपर टाइपसे छाप प्रकाशित कर आपके दृष्टिगोचर किया है अब सर्व विद्वद्वरोंसे मेरी प्रार्थना है कि इसमें जो कछु दृष्टिदोषसों भूल रह गई होय तो उसको शोध लेना और क्षमा करना.

आपका कृपाभिलाषी–
गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" छापाखाना,
कल्याण–मुंबई.

॥ श्रीः ॥

अथ घेरण्डसंहितास्थविषयानुक्रमणिका प्रारभ्यते ।

इति घेरण्डसंहितास्थविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,

" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापाखाना,

कल्याण-मुंबई.

ॐ हरिं वंदे ।

अथ

भाषानुवादसहिता ।

घेरण्डसंहिता ।

(योगशास्त्र)

एकदा चण्डकापालिर्गत्वा घेरण्डकुट्टिमम् ॥
प्रणम्य विनयात् भक्त्या घेरण्डं परिपृच्छति ॥ १ ॥

नत्वा कुंजविहारिणं व्रजवधूवक्त्रांबुजस्वादकं
श्रीनारायणपादपद्मयुगलं वंदे द्विरेफो ह्यहम् ॥
घेरंडेन कृता च योगसुलभा ज्ञानप्रदा भाष्यंते
टीका तद्व्रजभाषया सुकविना श्रीराधिकाब्जेन या ॥ १ ॥

अर्थ—एक समय चण्डकापालि (नामक कोई एक योगाभिलाषी) घेरण्ड (नामक एक बडे योगीश्वर) की कुटी (स्थान) को गयौ और विनयपूर्वक भक्तिसहित प्रणाम (नमस्कार) करके घेरण्ड (ऋषि) से पूँछने लग्यौ ॥ १ ॥

घटस्थयोगं योगेश तत्त्वज्ञानस्य कारणम् ॥
इदानीं श्रोतुमिच्छामि योगीश्वर वद प्रभो ॥ २ ॥

अर्थ—कि हे योगेश (योगियोंके मालिक) ! तत्त्वज्ञानका कारण घटस्थ (शरीरस्थ) योग है सो या समय मेरी इच्छा वाके सुनवेकों हुई है हे योगेश्वर ! हे प्रभो ! आप कृपा करके उसे मोसों कहो ॥ २ ॥

॥ घेरण्ड उवाच ॥

साधु साधु महाबाहो यस्मात्त्वं परिपृच्छसि ॥
कथयामि हि ते वत्स सावधानाऽवधारय ॥ ३ ॥

अर्थ–घेरण्ड ऋषि बोले कि हे महाबाहो (अर्थात् बाहुबलशालिन् क्षत्रियवंशभूषण) ! जो तुमने मोसों पूछो तासों मैं तुमको साधुवाद (अर्थात् धन्यवाद) देता हूँ हे वत्स (बालक) ! मैं तोसों कहों हों ताहि तू सावधान होके सुन और धारण कर ॥ ३ ॥

नास्ति मायासमं पापं नास्ति योगात्परं बलम् ॥
नास्ति ज्ञानात्परो बंधुर्नाहङ्कारात्परो रिपुः ॥ ४ ॥

अर्थ–माया (झूठ) के समान कोई पाप नहीं है और योगके परे कोई बल नहीं है और ज्ञानसों परें कोई बंधु (भाई) नहीं है और अहंकारके समान कोई वैरी है नहीं ॥ ४ ॥

अभ्यासात्कादिवर्णानि यथाशास्त्राणि बोधयेत् ॥
तथा योगं समासाद्य तत्त्वज्ञानं च लभ्यते ॥ ५ ॥

अर्थ–जैसे अभ्यास करते करत ककारादि वर्ण (अक्षर) जान पडे हैं और उनके परिचयके पीछे बहुत भाँतिके शास्त्रोंमें बोध हो जात है याही प्रकार योगके अभ्यास करते करते तत्त्वज्ञान प्राप्त हो जाता है ॥ ५ ॥

सुकृतैर्दुष्कृतैः कार्यैर्जायते प्राणिनां घटः ॥
घटादुत्पद्यते कर्म घटीयंत्रं यथा भ्रमेत् ॥ ६ ॥
ऊर्ध्वाधो भ्रमते यद्वत् घटीयंत्रं गवां वशात् ॥
तद्वत् कर्मवशाज्जीवो भ्रमते जन्ममृत्युभिः ॥ ७ ॥

अर्थ-भले और बुरे काम करवेसों प्राणियोंका अंग उत्पन्न होता है और वा शरीरसे फिर काम (कर्म) उत्पन्न होता है जैसे कि घटीयंत्र उलट पलट कभी नीचे कभी ऊँचेकी और कलोंके वश हो घूमता है इसी भाँति उत्तम मध्यम अधम कर्मोंके वश हो वह जीवभी जन्म और मृत्युके फेरमें पडा घूमता है तो फिर किस उपायसे वह मिट सक्ता है ॥ ६ ॥७॥

इसपर दृष्टान्त देते हैं।

आमं कुम्भमिवाम्भस्थो जीर्यमाणः सदा घटः ॥
योगानलेन संदह्य घटशुद्धिं समाचरेत् ॥ ८ ॥

अर्थ-यह अंग ऐसा गलायमान है जैसे कच्चे घडेमें जल भरवेसों वह घडा गल जाता है परन्तु जब वाको अग्निमें पकाय लेते हैं तब वह घडा कभी नहीं गलता इसी भाँति या शरीरको योगरूपी अग्निमे अच्छीभाँति पकायके पक्की करनी चाहिये ८॥

अथ सप्तसाधनम्।

शोधनं दृढता चैव स्थैर्यं धैर्यं च लाघवम् ॥
प्रत्यक्षं च निर्लिप्तं च घटस्थसप्तसाधनम् ॥ ९ ॥

अर्थ-घेरण्ड ऋषि कहते हैं कि योगाभ्यास करनेवालेको शरीरके सात साधन हैं। जैसे (शोधन १), देहको शुद्ध करना, (दृढता २) मजबूती, (स्थैर्य ३) एकसमान सदा देहका स्थिर रहना, (धैर्य ४) कभी घबडाना नहीं, (लाघव ५) हलकापन, (प्रत्यक्ष ६) आँख आदि इन्द्रियोंसे देखना छूना आदि, (निर्लिप्त ७) सब चीजका व्योहार वर्त्तना परन्तु सबसे अलग रहना ॥ ९ ॥

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद्दृढम् ॥
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता ॥ १० ॥
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात्प्रत्यक्षमात्मनि ॥
समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः ॥ ११ ॥

अर्थ—शोधन छः कर्मोंसे होता है। आसनोंसे दृढता होती है। मुद्राओंसे स्थिरता होती है। प्रत्याहारसे धैर्य होता है। प्राणायामसे लाघवता (हलकापन) होता है। ध्यानसे अपने आत्मामें जो चाहे प्रत्यक्ष हो जाता है। इसी प्रकार साधनोंसे अन्तमें अवश्य मुक्ति हो जाती है इसमें कछु संशय नहीं है ॥ १० ॥ ११ ॥

अब उन सातों साधनोंमें प्रथम शोधन जो छः कर्मोंसे होता है उन षट्कर्मोंको कहते हैं।

अथ षट्कर्माणि ।

धौतिर्बस्तिस्तथा नेतिर्लौलिकी त्राटकं तथा ॥
कपालभातिश्चैतानि षट्कर्माणि समाचरेत् ॥ १२ ॥

अर्थ—इन छः कर्मोंसे शोधन होता है वे ये हैं (धौती १) (बस्ति २) (नेति ३) (लौलिकी ४) (त्राटक ५) (कपालभाति) ६ इति ॥ १२ ॥

अथ धौतिः ।

अन्तर्धौतिर्दन्तधौतिर्हृद्धौतिर्मूलशोधनम् ॥
धौतिं चतुर्विधां कृत्वा घटं कुर्वन्ति निर्मलम् ॥ १३ ॥

अर्थ—धौति चार प्रकारकी है एक तौ अन्तर्धौति अर्थात् (अंगके भीतर शुद्ध करना) दूसरी दन्तधौति (दांतोंको

स्वच्छ करना) तीसरी हृद्धौति (हृदयको निर्मल करनो) चौथे मूल शोधन अर्थात् (नाभिको झक करनो) या प्रकारकी धौतिसों अंगकों निर्मल (मलरहित) करनो चाहिये ॥ १३॥

अथ अन्तर्द्धौतिः ।

वातसारं वारिसारं वह्निसारं बहिष्कृतम् ॥
घटस्य निर्मलार्थाय अन्तर्द्धौतिश्चतुर्विधा ॥ १४ ॥

अर्थ-अन्तर्द्धौतिभी चार प्रकारकी हैं एक तो वातसार (वायुकों त्यागनों) दूसरे वारिसार (जलकों त्यागनों) तीसरे वह्निसार (अग्निसार आगे कहेंगे) चौथे बहिष्कृत (यहभी आगे कहेंगे) यह जो घट (अंगके निर्मल अर्थात् शुद्धि करवेकी) चार प्रकारकी अन्तर्द्धौति हैं तिनमें पहले वातसार कहे हैं ॥ १४ ॥

अथ वातसारः ।

काकचंचुवदास्येन पिबेद्वायुं शनैः शनैः ॥
चालयेदुदरं पश्चाद्वर्त्मना रेचयेच्छनैः ॥ १५ ॥

अर्थ-अपने मुखकों कऊआकी चोंचके आकार (समान) करके अर्थात् दोनों ओठोंको सिकोडकें धीरें धीरें वायुको पीकर पेटमें वाकों चलाय अर्थात् (फिराकर) फिर धीरें धीरें वाको मुखसों निकारे याकों वातसार कहे हैं ॥ १५ ॥

अथ वातसारफलम् ॥

वातसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारणम् ॥
सर्वरोगक्षयकरं देहानलविवर्द्धनम् ॥ १६ ॥

अर्थ-अब वातसारको फल कहें हैं । वातसार यह परम (बहुत) गोप्य (गुप्त) है और देह निर्मल (शुद्धि) करवेवारो हैं और सबरे रोगनकों क्षय (नाश) करे है और देहकी अग्निकों बढायवेवारी है ॥ १६ ॥

अथ वारिसारः ।

आकंठं पूरयेद्वारि वक्रेण च पिबेच्छनैः ॥
चालयेदुदरेणैव चोदराद्रेचयेदधः ॥ १७ ॥

अर्थ-मुखसों धीरें धीरें कंठतक पानी पीकर फिर वाकों पेटमें फिरावें और वाकों गुदा (गाँड) सो निकार देवे याकों वारिसार कहें हैं ॥ १७ ॥

अथ वारिसारफलम् ।

वारिसारं परं गोप्यं देहनिर्मलकारकम् ॥
साधयेत्तं प्रयत्नेन देवदेहं प्रपद्यते ॥ १८ ॥

अर्थ-वारिसारभी बहुत गुप्त है और यह देहकों निर्मल (शुद्ध) करवेवारो है याकों बडे यत्नसो साधन करवेसों देवदेह प्राप्त होई है ॥ १८ ॥

नाभिग्रंथिं मेरुपृष्ठे शतवारं च कारयेत् ॥
अग्निसारमियं धौतिर्योगिनां योगसिद्धिदा ॥ १९ ॥
उदरामयजं त्यक्त्वा जठराग्निं विवर्द्धयेत् ॥
एषा धौतिः परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा ॥
केवलं धौतिमात्रेण देवदेहं भवेद्ध्रुवम् ॥ २० ॥

अर्थ-ढूँडीकी गाँठको सौवार मेरुपृष्ठमें लगावे अर्थात् (पेटकों ऐसा फुलावे खलावे) कि नाभि घुसाकर पीठकी हड्डीमें लगानों यह अग्निसार धौति कही जाय है जो योगियोंकों सिद्धिकी देवेवारी है ॥ १९ ॥ और यह पेटके रोगनकों दूर करे और जठराग्निकों बढावे है और यह धौति बहुत गुप्त है अर्थात् (बहुत कठिन है) और देवताकोभी दुर्लभ है अर्थात् (दे तानकोंभी नहीं मिले) ॥ और केवल याही धौतिके साधनमात्रसो देवदेह हो जाय है ॥ २० ॥

अथ बहिष्कृतधौतिः ।

काकीमुद्रां शोधयित्वा पूरयेदुदरं महत् ॥ २१ ॥
धारयेदर्द्धयामंतु चालयेदधोवर्त्मना ॥
एषा धौतिः परा गोप्या न प्रकाश्या कदाचन ॥२२॥

अर्थ-पहिले कौवाकी चोंचके समान मुख करके ऐसी वायु पान करे, जासो पेट भरजाइ ॥ २१ ॥ फिर वा पवनकें डेढ घंटा पेटमें रखि पाछें गुदा (गांड) के द्वारा बाहर निकारे यहभी धौति बहुत कठिन है याकों काऊकों जाहिर न करनी ॥ २२ ॥

अथ प्रक्षालनम् ।

नाभिमग्नो जले स्थित्वा शक्तिनाडीं विसर्जयेत् ॥
कराभ्यां क्षालयेन्नाडीं यावन्मलविसर्जनम् ॥ २३ ॥
तावत्प्रक्षाल्य नाडीं च उदरे वेशयेत्पुनः ॥
इदं प्रक्षालनं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥
केवलं धौतिमात्रेण देवदेहो भवेद्ध्रुवम् ॥ २४ ॥

अर्थ-नाभि (टूँडी) डूब जाय ऐसे गहरे जलमें ठाडो हैकें शक्तिनाडी (त्रिवली) कों बाहर करकें जबतक मल दूर न होई तबतक बहुत धोवैं शुचि भये पीछें फिर पेटके भीतर बैठार दे या प्रक्षालनकी विधि बडी कठिन है और देवतानकोभी दुर्लभ है ॥ और याके बल धौति मात्रसेही निश्चय देवदेह होजाइ है ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ बहिष्कृतधौतिप्रयोगः ।

यामार्द्धं धारणं शक्तिं यावन्न धारयेन्नरः ॥
बहिष्कृतमहद्धौतिस्तावच्चैव न जायते ॥ २५ ॥

अर्थ-जबतक साधक आधे पहरतक स्वास न रोक सकै तबतक यह महाधौतिको धारण न करै ॥ क्योंकि उस शक्तिके विना अधम होनेका भय रहता है ॥ २५ ॥

अथ दन्तधौतिः ।

दन्तमूलं जिह्वामूलं रंध्रं च कर्णयुग्मयोः ॥
कपालरंध्रं पंचैते दन्तधौतिं विधीयते ॥ २६ ॥

अर्थ-दन्तधौति पांच तरहकी हैं जैसे (दांतोंकी जडको धोना १) (जीभकी जडकों धोना २) कानके दोनों छेदोंको धोना ३) (तथा कपालके छेदको धोना ॥ ५) ॥ २६ ॥

अथ दन्तमूलधौतिः ।

खादिरेण रसेनाथ मृत्तिकया च शुष्कया ॥
मार्जयेद्दन्तमूलं च यावत्किल्बिषमाहरेत् ॥ २७ ॥

अर्थ-खैर रसमों अथवा विशुद्ध सूखी माटीसों दाँतोंकी

जडकौ झक करे और जबतक मैल न दूर होइ तबतक कुल्ला कर कर फिर फिर झक करै ॥ २७ ॥

अथ दन्तमूलधौतिफलम् ।

दन्तमूलं परा धौतिर्योगिनां योगसाधने ॥
नित्यं कुर्यात्प्रभाते च दन्तरक्षाय योगवित् ॥
दन्तमूलं धारणादिकार्येषु योगिनां मतम् ॥ २८ ॥

अर्थ–योगियोंके योगसाधनमें दन्तमूल धौति (अर्थात् दाँतका धोना) सबसे उत्तम काम है। यासों योगके जाननेवाले नर नित्यप्रति प्रातः समय दाँतोकी रक्षाके लिये इस दातौन आदि विधिकौ करनो योगियोंका मुख्य काम है २८॥

अथ जिह्वाशोधनम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि जिह्वाशोधनकारणम् ॥
जरामरणरोगादीन् नाशयेद्दीर्घलम्बिका ॥ २९ ॥

अर्थ–दन्तशोधनके पीछे जिह्वा (जीभ) शोधन कहे हैं। जिह्वाके शोधनसो जीभ लम्बी होइ है और तासों जरा (बुढापा) अर्थात् मौत तथा और सब रोग दूर हो जाई हैं ॥ २९ ॥

अथ जिह्वामूलधौतिः ।

तर्जनी मध्यमाऽनामा अंगुलित्रययोगतः ॥
वेशयेद्गलमध्ये तु मार्जयेल्लम्बिकाजडम् ॥
शनैः शनैर्मार्जयित्वा कफदोषं निवारयेत् ॥ ३० ॥

अर्थ–(तर्जनी) अंगुठाके पासकी अंगुली मध्यमा (बीचकी अंगुली) अनामिका (छोटी अंगुलीके पासकी)

ये तीन अंगुलियोंको गलेके भीतर धसेरके जीभकी जड (मूल) तब बार बार घिसे और धीरें धीरें जो कुछ कफका दोष होय उसको निकाल गेरे और यह कफके दोषको दूर करैं हैं ॥ ३० ॥

मार्जयेन्नवनीतेन दोहयेच्च पुनः पुनः ॥
तदग्रं लोहयंत्रेण कर्षयित्वा शनैः शनैः ॥ ३१ ॥

अर्थ—फिर माखनको जीभमें लगाकर रोजही रोज बार बार दुहे और पीछे लोहेके चीमटासों उस जीभका अग्रभाग पकडकें धीरें धीरें रोज खेंचो करे ॥ ३१ ॥

नित्यंकुर्यात्प्रयत्नेन रवेरुदयकेऽस्तके ॥
एवं कृते च नित्ये च लम्बिका दीर्घतां व्रजेत्॥ ३२॥

अर्थ—प्रदिदिन सूर्यके उदय और अस्तसमयमें यह धौति ताको अभ्यास करे यदि इसी प्रकार निचही नित्त यह विधि करी जाय तो जीभ लम्बी हो जायगी ॥ ३२ ॥

अथ कर्णधौतिः ।

तर्जन्यनामिकायोगान्मार्जयेत्कर्णरंध्रयोः ॥
नित्यमभ्यासयोगेन नादान्तरं प्रकाशयेत् ॥ ३३ ॥

अर्थ—तर्जनी (अंगूठाके पासकी अंगुली) और अनामिका (छोटी अँगुलीके पासकी अंगुली) के योगसों कानोंके दोनों छेदोंको प्रतिदिन शुद्ध करे तौ एक भाँतिका विशुद्ध नाद प्रगट हुवा करता है ॥ ३३ ॥

अथ कपालरंध्रशोधनम् ।

बद्धांगुष्ठेन दक्षेण मार्जयेद्भालरंध्रकम् ॥

एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत् ॥ ३४ ॥
नाडी निर्मलतां याति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥
निद्रान्ते भोजनान्ते च दिवान्ते च दिने दिने ॥३५॥

अर्थ-दहने हाथके अँगूठेके द्वारा प्रतिदिन सोयके उठै तब और भोजनके अंतमें और सूर्यास्तके समयमें कपालरंध्र अर्थात् शिरके बीचमें जो गढेला है उसे जलहीसों साफ करै और या प्रकारके अभ्याससों भीतरी कफ ताके दोष नाश हो जाय हैं। और नाडियाँ निर्मल हो जाती हैं और दृष्टि (निगह) दिव्य (साफ) हो जाती है ॥ ३४ ॥ ३५॥

हृद्धौतिं त्रिविधं कुर्याद्दंडवमनवाससा ॥ ३६ ॥

अर्थ-हृद्धौति अर्थात् हृदयको झक्का करनेकी विधि, तीन तरहकी है (दंडधौति १) (वमनधौति २) (वासधौति३) ३६॥

रंभादंडं हरिद्राया वेत्रदंडं तथैव च ॥
हृन्मध्ये चालयित्वा तु पुनः प्रत्याहरेच्छनैः ॥३७॥

अर्थ-केलाके बीचकों जो (सारभाग वाको दंडा) वा हरदीको दंडा अथवा चीकने वेतको दंडा बनायकें हृदयके बीच धीरें धीरें प्रवेश करके फिर धीरें धीरें बाहर निकारे याको हृद्धौति कहते हैं ॥ ३७ ॥

अथ दंडधौतिः ।

कफपित्तं तथा क्लेदं रेचयेदूर्ध्ववर्त्मना ॥
दंडधौतिविधानेन हृद्रोगं नाशयेद्ध्रुवम् ॥ ३८ ॥

अर्थ-इस दंडधौतिके करवेसों कफ और पित्त तथा क्लेद

(उकलाहट) आदि विकारी मल मुखके द्वारा हृदयसों निकाल बाहर होते हैं जासों हृदयके समस्त रोग निश्चय नाश होय जाय हैं ॥ ३८ ॥

अथ वमनधौतिः ।

भोजनान्ते पिबेद्वारि चाकंठ पूर्णितं सुधीः ॥ ३९ ॥
ऊर्ध्वदृष्टिं क्षणं कृत्वा तज्जलं वमयेत्पुनः ॥
नित्यमभ्यासयोगेन कफपित्तं निवारयेत् ॥ ४० ॥

अर्थ-बुद्धिवान् पुरुष भोजनके अंतमें कंठतक जल पीलेवे फिर थोडी देरतक ऊपरकी ओर देखते रहै फिर थोडी देरसें वा जलको वमन करदेवे इसीको वमनधौति कहते हैं । इस वमन धौतिका जो प्रतिदिन अभ्यास करवेसों कफ और पित्तके (दोषोंको) दूर करे है ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथ वासधौतिः ।

चतुरंगुलविस्तारं सूक्ष्मवस्त्रं शनैर्गिलेत् ॥
पुनः प्रत्याहरेदेतत् प्रोच्यते धौतिकर्मकम् ॥४१॥

अर्थ-चार अंगुलका चौडा और (कमसों कम पाँच हाथ) लम्बा महीन कपडा लेकर धीरे धीरे निगलजाय फिर वाकों धीरे धीरे निकाल बाहर करे इसको वासधौति कहते हैं ॥ ४१ ॥

अथ वासधौतिफलम् ।

गुल्मज्वरप्लीहकुष्ठं कफपित्तं विनश्यति ॥
आरोग्यं बलपुष्टिश्च भवेत्तस्य दिने दिने ॥४२॥

अर्थ-वासधौतिके अभ्यास करनेसे गुल्मरोग ज्वररोग

प्लीहरोग कुष्ठरोग तथा कफ और पित्तके रोगोंको नाश करता है और आरोग्य रखता तथा बल पुष्टाई (अंगसुख) दिन प्रति दिन देता है ॥ ४२ ॥

अथ मूलशोधनम् ।

अपानक्रूरता तावद्यावन्मूलं न शोधयेत् ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन मूलशोधनमाचरेत्॥ ४३ ॥

अर्थ–जबतक मूल शोधन (अर्थात् गुदाके द्वारा) साफ नहीं होता तबतक अपानकी क्रूरता अर्थात् (करडापन बना रहता है) और गुदाके वायु (पवन) कष्टसे निकलता है । इससे सब प्रकारके यत्नकर मूलशोधन करना चाहिये ॥ ४३ ॥

पीतमूलस्य दंडेन मध्यमांगुलिनापि वा ॥
यत्नेन क्षालयेत् गुह्यं वारिणा च पुनः पुनः ॥४४॥

अर्थ–कच्ची हरदीकी जडसे वा मध्यमा (बीचकी) अंगुलीसे बार बार यत्नके सहित जलद्वारा गुदाका द्वार साफ करना चाहिये ॥ ४४ ॥

वारयेत्कोष्ठकाठिन्यमामाजीर्णं निवारयेत् ॥
कारणं कान्तिपुष्ट्योश्च दीपनं वह्निमंडलम् ॥ ४५ ॥

अर्थ–मूलशोधनके द्वारा कोठों कठिन (अर्थात् पेटके भीतरकों कडापन) तथा आमकी अजीर्णता दूर हो जाय है और कांति (तेज) कौं करवेवारो तथा पुष्टता देहमें देवेवारो तथा तथा जठराग्निकों बढायवेवारो है ॥ ४५ ॥

अथ बस्तिप्रकरणम् ।

जलबस्तिः शुष्कबस्तिर्बस्तिः स्याद्विविधा स्मृता ॥
जलबस्तिं जले कुर्याच्छुष्कबस्तिं सदा क्षितौ॥४६॥

अर्थ–बस्ति (कर्म) दो प्रकारकी है जलबस्ति और शुष्क (सूखी) बस्ति जलबस्ति तो जलसों होई है और शुष्क बस्ति थलमें साधन करनी चाहिये ॥ ४६ ॥

अथ जलबस्तिविधिमाह ।

नाभिमग्नजले पायुं न्यस्तवानुत्कटासनम् ॥
आकुंचनं प्रसारं च जलबस्तिं समाचरेत् ॥ ४७॥

अर्थ–टुंडी डूब जाय इतने जलमें बैठकर उत्कटआसन (आगे कहेंगे) बैठकर गुदादेशकों सकोडे और फैलावे इसको जलबस्ति कहते हैं ॥ ४७ ॥

अथ जलबस्तिफलम् ।

प्रमेहं च उदावर्तं क्रूरवायुं निवारयेत् ॥
भवेत् स्वच्छंददेहश्च कामदेवसमो भवेत् ॥ ४८ ॥

अर्थ–जलबस्तिके साधनसे प्रमेहरोग उदावर्तरोग क्रूरवायु (कुपित पवन) इनको दूर करै और देह (अंग) अपनेही काबूमें रहै और कामदेवके समान रूपवान् हो जाता है ॥ ४८ ॥

अथ स्थलबस्तिविधिमाह ।

बस्तिं पश्चिमोत्तानेन चालयित्वा शनैरधः ॥
आश्विनीमुद्रया पायुमाकुंचयेत्प्रसारयेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ–थलहीमें पीठकी ओर उत्तान होकर पडे ओर क्रम

शः गुदाके द्वारको चलावे इसी भाँति अश्विनीमुद्रा (जो आगे कहेंगे) उसके द्वारा गुदाको सकोडे और फैलावे (चौडी) करे ऐसा करनेसे थलबस्ति साधीजाय ॥ ४९ ॥

अथ स्थलबस्तिफलम्।

एवमभ्यासयोगेन कोष्ठदोषं न विद्यते ॥
विवर्द्धयेज्जाठराग्निमामवातं विनाशयेत् ॥ ५० ॥

अर्थ–इसी भाँति थलबस्तिके साधन करवेसों कोष्ठ (कोठे) में दोष (वात) पित्त कफादि नहीं रहते और (उदरमें) जठराग्नि है वह बढ जाती है और आमवातरोगभी नाश होइ है ॥ ५० ॥

अथ नेतिविधिमाह।

वितस्तिमानं सूक्ष्मसूत्रं नासानाले प्रवेशयेत् ॥
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात् प्रोच्यते नेतिकर्मकम् ॥ ५१ ॥

अर्थ–बीताभरका महीन डोरा नाकके छेदोंमें होकर डाले पीछे उसको मुखके द्वारा निकासा करे। इसको नेतिकर्म कहते हैं ॥ ५१ ॥

अथ नेतिफलमाह।

साधनान्नेतिकर्माणि खेचरीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥
कफदोषं विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥ ५२ ॥

अर्थ–नेतिकर्मके साधन करनेसो खेचरी (आकाशको जानेआने) की सिद्धि हो जाती है और कफके दोषको नाश करे है और दिव्यदृष्टि (अर्थात् न दीखती चीजभी देखसके) इति ॥

अथ लौलिकीविधिमाह ।

अमन्दवेगे तुन्दं च भ्रामयेदुभपार्श्वयोः ॥
सर्वरोगान्निहंतीह देहानलविवर्द्धनम् ॥ ५३ ॥

अर्थ–अति प्रबल वेगसों पेटकों दोनों बगल घुमावे इसीका नाम लौलिकी योग है यह सब भाँतिके रोगोंको नाश करे है और देहस्थ जो अग्नि है ताकों बढावे है अर्थात् अन्नको पचावे है ॥ ५३ ॥

अथ त्रोटकविधिमाह ।

निमेषोन्मेकं त्यक्त्वा सूक्ष्मलक्ष्यं निरीक्षयेत् ॥
यावदाश्रूणि पतंति त्रोटकं प्रोच्यते बुधैः ॥ ५४ ॥

अर्थ–पलकका भाँजना बंद करके किसी छोटी चीजकी ओर जबतक कि आँसू न गिरें इकटक देखता रहै याहीकों बुद्धिमान् त्रोटक योग कहते हैं । इति ॥ ५४ ॥

अथ त्राटकफलमाह ।

एवमभ्यासयोगेन शाम्भवी जायते ध्रुवम् ॥
नेत्ररोगा विनश्यन्ति दिव्यदृष्टिः प्रजायते ॥ ५५ ॥

अर्थ–इसी प्रकार त्रोटक (योग) के अभ्यास करवेसों शांभवी (मुद्रा) सिद्धि हो जाय है और नेत्रके सब रोग-नकों नाश करे हैं और दि य ष्टि होय है ॥ ५५ ॥

अथ कपालभातिविधिः ।

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण शीत्क्रमेण विशेषतः ॥
भालभातिं त्रिधा कुर्यात् कफदोषं निवारयेत्॥५६॥

अर्थ—कपालभाति योग तीन प्रकारका है । (वातक्रम) (व्युत्क्रम) और (शीत्क्रम) साधनसों कफके सबरे रोग नाश होय हैं । इति ॥ ५६ ॥

अथ वातक्रमकपालभातिः ।

इडया पूरयेद्वायुं रेचयेत् पिंगलां पुनः ॥
पिंगलया पूरयेद्वा पुनश्चंद्रेण रेचयेत् ॥ ५७ ॥

अर्थ--इडा अर्थात् (नाकके वायें छेद) के द्वारा पवनकों खैंचके भरे और पिंगला अर्थात् (दहने नाकके छेदसों) निकारै याही प्रकार दहने नाकके छेदसों पवन भरकर फिर वायें छेदसों निकार देवे । इसे वातक्रमकपालभाति कहें हैं । इति५७

पूरकं रेचकं कृत्वा वेगेन न तु चालयेत् ॥
एवमभ्यासयोगेन कफदोषं निवारयेत् ॥ ५८ ॥

अर्थ—जब पूरक अथवा रेचक अर्थात् श्वास खैंचे और निकारे तब जल्दी न करे क्रमसों धीरे धीरे साधे ऐसे अभ्यास (योग) करनेसों कफके दोष दूर करे है ॥ ५८ ॥

अथ व्युत्क्रमकपालभातिः ।

नासाभ्यां जलमाकृष्य पुनर्वक्त्रेण रेचयेत् ॥
पायं पायं व्युत्क्रमेण श्लेष्मदोषं निवारयेत् ॥ ५९ ॥

अर्थ--दोनों नाकके छेदोंसे लकों खैंचकर फिर मुखकी राहसों गेरतो जाय और मुखकी राहसेभी जल पीपीके फिर जल नाककी राह गेरतो जाय इसको व्युत्क्रम कपालभाति कहते हैं और कफके सबरे दोषोंको दूर करे है । इति॥५९॥

अथ शीत्क्रमकपालभातिः ।

शीत्कृत्य पीत्वा वक्त्रेण नासानालैर्विरेचयेत् ॥
एवमभ्यासयोगेन कामदेवसमो भवेत् ॥ ६० ॥
न जायते च वार्द्धक्यं जरा नैव प्रजायते ॥
भवेत् स्वच्छंददेहश्च कफदोषं निवारयेत् ॥ ६१ ॥
इति श्रीघेरण्डसंहितायां महर्षिघेरण्डनृपचण्डकापा-
लिसंवादे षट्कर्मसाधनं नाम प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

अर्थ—मुखसों शीत्कार कर (सुर सुर) कर पानी पीनों और वाकों नाकके छेदोंसे गिराय देवे इसको शीत्क्रम कपाल-भाति कहते हैं । या प्रकार योगाभ्यास करवेसो मनुष्य काम-देवके समान (कांतिवारो) हो जाय। और बुढापेकी निर्बलता शरीरमें नहीं आइ सके और देह अपने काबूमें रहे है और कफके सब दोषनकों दूर करै है । इति ॥ ६० ॥ ६१ ॥

इति श्रीघेरण्डसंहितायां चारों संप्रदायि वामन राजादिके गुरु बडे चौबे श्री ५ कल्याणचंदात्मज राधाचंद्र कलित ब्रज भाष्य-भाषानुवादसहित षट्कर्मसाधनं नाम प्रथमोपदेशः ॥ १ ॥

द्वितीयोपदेशः २ ।

अथासनविधिमाह ।

आसनानि समस्तानि यावन्तो जीवजन्तवः ॥
चतुरशीतिलक्षाणि शिवेन कथितं पुरा ॥ १ ॥

तेषां मध्ये विशिष्टानि षोडशोनं शत कृतम् ॥
तेषां मध्ये मर्त्यलोके द्वात्रिंशदासनं शुभम् ॥ २ ॥

अर्थ—घेरण्डमहाराजनें कह्यौ कि धरतीमें जितने जीवजन्तु हैं उतनेही आसन हैं और शास्त्रकारोंनें अखीर दर्जा चौराशी लाख योनि संख्या ठहराई है याहीसों प्रथम शिव (महादेव) जीनें चौरासी लाख आसन कहे हैं परंतु उनमें चौराशि सौ, और कमसे कम चौराशी आसन श्रेष्ठ हैं उनमेंसोंभी केवल बत्तीस आसन मनुष्यलोकके लिये अच्छे हैं ॥ १ ॥ २ ॥

अथासनभेदाः ।

सिद्धं पद्मं तथा भद्रं मुक्तं वज्रं च स्वस्तिकम् ॥
सिंहं च गोमुखं वीरं धनुरासनमेव च ॥ ३ ॥
मृतं गुप्तं तथा मत्स्यं मत्स्येंद्रासनमेव च ॥
गोरक्षं पश्चिमोत्तानं उत्कटं संकटं तथा ॥ ४ ॥
मयूरं कुक्कुटं कूर्मं तथा चोत्तानकूर्मकम् ॥
उत्तानमंडुकं वृक्षं मंडूकं गरुडं वृषम् ॥ ५ ॥
शलभं मकरं उष्ट्रं भुजंगं च योगासनम् ॥
द्वात्रिंशदासनानि तु मर्त्यलोके च सिद्धिदम् ॥६॥

अर्थ—सिद्धासन १, पद्मासन २, भद्रासन ३, मुक्तासन ४, वज्रासन ५, स्वस्तिकासन ६, सिंहासन ७, गोमुखासन ८, वीरासन ९, धनुरासन १०, मृतासन ११, गुप्तासन १२, मत्स्यासन १३, मत्स्येंद्रासन १४, गोरक्षासन १५, पश्चिमोत्तानासन १६, उत्कटासन १७, संकटासन १८, मयूरासन १९,

कुक्कुटासन २०, कूर्मासन २१, उत्तानकूर्मासन २२, उत्तानमण्डूकासन २३, वृक्षासन २४, मंडूकासन २५, गरुडासन २६, वृषभासन २७, शलभासन २८, मकरासन २९, उष्ट्रासन ३०, भुजंगासन ३१, योगासन ३२ ये ३२ बत्तीस आसन मनुष्यलोकके लिये सिद्धि देनेवाले हैं ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ सिद्धासनविधिः ।

योनिस्थानकमंघ्रिमूलघटिकं संपीड्य गुल्फेतरम् ।
मेढ्रे संप्रणिधाय तं तु चिबुकं कृत्वा हृदि स्थायिनम् ॥
स्थाणुः संयमितेंद्रियोऽचलदृशा पश्यन्भ्रुवोरंतरम् ।
मोक्षं चैव विधीयते फलकरं सिद्धासनं प्रोच्यते ॥ ७ ॥

अर्थ–जितेंद्रिय साधक पांयकी एडीको योनिस्थान (अंडकोश) के नीचे भिडावे और फिर दूसरी एडी (गुल्फ) लिंगके ऊपर धरै फिर डाढीको छातीमें लगावे फिर इंद्रियनको (रोक) साधकर अर्थात् एक ध्यानमें रखकर दृष्टिकों एकजगहमें राखकर भौंहके बीचके स्थानकों देखे या प्रकार करवेसों सिद्धासन कऱ्यो जाय है और यह आसन (मोक्ष) फल तथा सर्व सुखको देनेवारो है ॥ ७ ॥

अथ पद्मासनविधिः ।

वामोरूपरि दक्षिणं हि चरणं संस्थाप्य वामं तथा ।
दक्षोरूपरि पश्चिमेन विधिना कृत्वा कराभ्यां दृढम् ॥
अंगुष्ठे हृदये निधाय चिबुकं नासाग्रमालोकयेत् ।
एतद्व्याधिविनाशकारणपरं पद्मासनं चोच्यते ॥ ८ ॥

अर्थ–दहने पाँयकों बाँई जाँघपर धर और दाहनी जाँघपर बायो पाँय धरकर और पीछेकी ओरसे दाँये हांथसों दाँये पाँयके अंगूठाको और बाँये हाथसों बाँये पाँयके अंगूठाको गाढौ पकरे या भाँति डाढी (गुल्फ) छातीपर धरकर नाकके अग्र (आगे) के भागकों देखे। याको नाम पद्मासन है। यह आसन सबरी व्याधि (रोग) निकों नाश करै है ॥ ८ ॥

अथ भद्रासनविधिः ।

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेण समाहितः ॥
पदांगुष्ठे कराभ्यां च धृत्वा च पृष्ठदेशतः ॥ ९ ॥
जालंधरं समासाद्य नासाग्रमवलोकयेत् ॥
भद्रासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशकम् ॥ १० ॥

अर्थ–दोनों एडी अंडकोशको नीचे उलटके धरे फिर पीठकी ओरसे दोनों हाथोंसे दोनों पाँयनिके अँगूठानको पकरै और जालंधरबंध (आगे कहेंगे) करके नाकके आगेके भागको ध्यान कर देखे इसका नाम (भद्रासन) है और यह आसन सबरे रोगनिको नाश करै ॥ ९ ॥ १० ॥

अथ मुक्तासनविधिः ।

पायुमूले वामगुल्फं दक्षगुल्फं तथोपरि ॥
शिरोग्रीवासमं कार्यं मुक्तासनं तु सिद्धिदम् ॥ ११ ॥

अर्थ–बांई एडी गुदाकी जडमें लगावे वाहीके ऊपर दाँहि एडी राखे और शिर कंठ समानभाव राखे बिलकुल हलवे न पावे और सीधौ होकर बैठे इसको मुक्तासन कहते हैं। यह

आसन (साधकको) सिद्धि (सब भाँति) की देवेवारो है ११ ॥

अथ वज्रासनविधिः ।

जंघाभ्यां वज्रवत्कृत्वा गुदपार्श्वे पदावुभौ ॥
वज्रासनं भवेदेतत् योगिनां सिद्धिदायकम् ॥ १२ ॥

अर्थ--दोनों जाँघोंकों वज्रके आकार (समान) करके पीछे गुदाके दोनों तरफ दोऊ पाँय भिडावे । इसको वज्रासन कहते हैं । यह आसन योगियोंको सिद्धिका देवेवारो है ॥ १२ ॥

अथ स्वस्तिकासनविधिः ।

जानूर्वोरन्तरे कृत्वा योगी पादतले उभे ॥
ऋजुकायः समासीनः स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते ॥ १३ ॥

अर्थ--दोनों पिंडुरी दोनों जाँघोंके बीच करके दोनों पाँयनिको तलभी उसीके मध्यमें धरे और ऐंठ छोडकें सरलभाव शरीर करकें बैठे । यह स्वस्तिकासन है ॥ १३ ॥

अथ सिंहासनविधिः ।

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेणोर्ध्वतां गतः ॥
चितिमूलो भूमिसंस्थः कृत्वा च जानुनोपरि ॥ १४ ॥
व्यक्तव्यक्तौ जलंध्रं च नासाग्रमवलोकयेत् ॥
सिंहासनं भवेदेतत् सर्वव्याधिविनाशकम् ॥ १५ ॥

अर्थ--दोनों एडी (गुल्फ) अंडकोश (पेलडे) के नीचें उलटकर आपुसमें भिडायकें धरे और ऊपरकी ओर बाहर करले और दोनों पिंडुरी भूमि (धरती) में लगाय दे और पिंडुरीनिके ऊपर मुखको खोलकर ऊँची करके जालंधरबंध (आगे

कहेंगे) के आश्रयसों नासिका (नाक) के अग्रभागकों देखते रहे इसकों (सिंहासन) कहते हैं और याके साधनसों सर्व रोग नाशकों प्राप्त होय हैं। इति ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ गोमुखासनविधि।

पादौ च भूमौ संस्थाप्य पृष्ठपार्श्वे निवेशयेत् ॥
स्थिरकायं समासाद्य गोमुखं गोमुखाकृतिः ॥ १६ ॥

अर्थ—दोनों पाँयनिकों भूमिमें जमायकें पीठकी बगलोंमें लगावे और शरीरकों ठहरायके बैठे तौ यह गोमुखके आकार देख पडेगो इसको नाम गोमुखासन है ॥ १६ ॥

अथ वीरासनविधिः।

एकपादमथैकस्मिन् विन्यस्येदुरुसंस्थितम् ॥
इतरस्मिंस्तथा पश्चाद्वीरासनमितीरितम् ॥ १७ ॥

अर्थ—एक जंघाके ऊपर एक पाँय धरकें दूसरो पाँय पीछेकी ओर धरे इसको वीरासन कहते हैं। इति ॥ १७ ॥

अथ धनुरासनविधिः।

प्रसार्य पादौ भुवि दंडरूपौ करौ च पृष्ठ धृत-
पादयुग्मम् ॥ कृत्वा धनुस्तुल्यपरिवर्तितांगं नि-
धाय योगी धनुरासनं तत् ॥ १८ ॥

अथ—दोनों पाँय धरतीमें समान भावसें लकडियाकी भाँति फैलाय दे और दोनों हाथ पीठकी ओरसे लाकर दोनों पाँयनिको पकडे और देहकों धनुषके आकार करकें और उलटेपुलटे इसको योगीलोग धनुरासन कहते हैं। इति ॥ १८ ॥

अथ मृतासनविधिः ।

उत्तानशववद्भूमौ शयानं तु शवासनम् ॥
शवासनं श्रमहरं चित्तविश्रान्तिकारणम् ॥ १९ ॥

अर्थ—मरे भये मनुष्यकी तरह धरातलमें शयन करनेहीसे मृतासन होता है इसको शवासनभी कहते हैं यह आसन श्रम (परिश्रम मेहनत) को दूर करे है और चित्तको विश्राम करवेवारो है । इति ॥ १९ ॥

अथ गुप्तासनविधिः

जानुनोरंतरे पादौ कृत्वा पादौ च गोपयेत् ॥
पादोपरि च संस्थाप्य गुदं गुप्तासनं विदुः ॥ २० ॥

अर्थ—दोनों घोटुओंके बीचमें दोनों पावोंको गुप्तभावसों राखै और दोनों पाँवोंपै गुदाको धरै इसको गुप्तासन कहते हैं ॥ २० ॥

अथ मत्स्यासनविधिः ।

मुक्तपद्मासनं कृत्वा उत्तानशयनं चरेत् ॥
कूर्पराभ्यां शिरो वेष्ट्य मत्स्यासनं तु रोगहा ॥ २१ ॥

अर्थ—मुक्तपद्मासन लगायकें हाथसें दोनों घोटुवोंके शिरको लपेटे और चित्त होके सोय जावे इसको मत्स्यासन कहें हैं और यह सबरे रोगनिकों दूर करै है ॥ २१ ॥

अथ पश्चिमोत्तानआसनविधिः ।

प्रसार्य्य पादौ भुवि दंडरूपौ संन्यस्त भालश्चिति-
युग्ममध्ये ॥ यत्नेन पादौ च धृतौ कराभ्यां योगी-
न्द्रपीठं पश्चिमोत्तानमाहुः ॥ २२ ॥

अर्थ-दोनों पाँय धरतीमें लकडियाकी तरह फैलायके यत्नके सहित दोनों पाँय हाथनिसों पकरै और दोनों जाँघोंके बीच अपने शिरको धरै इसको योगींद्र (योगीनके इंद्र) याकों पश्चिमोत्तान आसन कहे हैं । इति ॥ २२ ॥

अथ मत्स्यन्द्रासनविधिः ।

उदरं पश्चिमाभासं कृत्वा तिष्ठति यत्नतः ॥
नम्रांगवामपादं हि दक्षजानूपरि न्यसेत् ॥ २३ ॥
तत्र याम्यं कूर्परं च याम्यं करे वक्त्रकम् ॥
भ्रुवोर्मध्ये गतां दृष्टिं पीठं मात्स्येंद्रमुच्यते ॥ २४ ॥

अर्थ-पेटको पीठकी तरह करै अर्थात् पेटको और बायें पाँयको नवायके दाहने पाँयकी जाँघपर धरै याही भाँति बायें पाँयपै दाहने पाँयकी एडी धरै । इतकों दाहने हाथपै मुखकों धरै और भौंहानिको मध्यमें (दृष्टि राखे) अर्थात् देखे याकों मात्स्येंद्रासन कहे हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥

अथ गोरक्षासनविधिः ।

जानूर्वोरंतरे पादौ उत्तानाव्यक्तसंस्थितौ ॥
गुल्फौ चाच्छाद्य हस्ताभ्यामुत्तानाभ्यां प्रयत्नतः २५
कंठसंकोचनं कृत्वा नासाग्रमवलोकयेत् ॥
गोरक्षासनमित्याह योगिनां सिद्धिकारणम् ॥ २६ ॥

अर्थ-दोनों जाँघ और पींडुरीनके बीचमें दोनों पाँय उत्तान करके गुप्त भावसों राखे फिर दोनों हाथनसों दोनों एडी पकड लेय ता पीछे कंठकों संकुचित (सुकोडकें) नाकके आगेके

भागकों देखै याकौ गोरक्षासन कहैं हैं यह योगियोंकों सिद्धिकौ देवेवारौ है ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथ उत्कटासनविधिः ।

अंगुष्ठाभ्यामवष्टभ्य धरां गुल्फे च खे गतौ ॥
तत्रोपरि गुदं न्यस्य विज्ञेयमुत्कटासनम् ॥ २७ ॥

अर्थ—पाँयकों दोनों अंगुठेके बलसों भूमि (धरती) में धरकें दोनों एडीनको निरालम्ब होके उठायदे और उन्हीं एडीनपै गुदाको धरे याकों उत्कटासन कहै हैं ॥ २७ ॥

अथ संकटासनविधिः ।

वामपादं चितेर्मूलं संन्यस्य धरणीतले ॥
पाददंडेन याम्येन वेष्टयेद्वामपादकम् ॥
जानुयुग्मे करौ युग्ममेतत्तु संकटासनन् ॥ २८ ॥

अर्थ—बाँये पाँय और अंगूठाकों भूमिमें लगाय दे और दाँये पाँयसों बाँयों पाँय लपेटले और फिर दोनों जाँघोंपर दोनों हाथ धरे इसकौ संकटासन कहते हैं । इति ॥ २८ ॥

अथ मयूरासनविधिः ।

धरामवष्टभ्य करयोस्तलाभ्यां तत्कूर्परे स्थापितनाभिपार्श्वम् ॥ उच्चासनो दंडवदुत्थितः खे मयूरमेतत्प्रवदन्ति पीठम् ॥ २९ ॥

अर्थ--हाथके दोनों तलोंसे भूमिकौ धारण करै पीछे हाथकी दोनों गाँठनकों नाभिके दोनों बगलोंमें धारण करनों और दोनों पाँयनिको फैलायके ऊंचे आसनसे लकडियाकी तरह आकाशमें देहको उठावै यह मयूरासन है । इति ॥ २९ ॥

अथ कुक्कुटासनविधिः।

पद्मासनं समासाद्य जानूर्वोरंतरे करौ ॥
कूर्पराभ्यां समासीनो मंचस्थः कुक्कुटासनम् ॥ ३० ॥

अर्थ--पद्मासन बैठकर दोनों जाँघ और पींडुरीनके बीचमें हाथको धसेरके दोनों हाथोंकी कोन्हीनपै मंच (पलका) की तरह उठके बैठे इसको कुक्कुटासन कहैं हैं ॥ ३० ॥

अथ कूर्मासनविधिः।

गुल्फौ च वृषणस्याधो व्युत्क्रमेण समाहितौ ॥
ऋजुकायशिरोग्रीवं कूर्मासनमितीरितम् ॥ ३१ ॥

अर्थ--दोनों एडिनकों अंडकोश (पेलडे) के नीचे उलटके धरै और शिर (माथौ) और ग्रीवा तथा शरीरको सीधे धरकर रखै इसकौ कूर्मासन कहैं हैं। इति ॥ ३१ ॥

अथोत्तानकूर्मासनविधिः।

कुक्कुटासनबंधस्थं कराभ्यां धृतकंधरम् ॥
पीठं कूर्मवदुत्तानमेतदुत्तानकूर्मकम् ॥ ३२ ॥

अर्थ--पहिले कुक्कुटासन (पूर्व कह चुके हैं) बाँध लेय फिर दोनों हाथोंसे कंधा पकडके कछुआकी तरह उत्तान हो जाय इसकौ उत्तानकूर्मासन कहैं हैं। इति ॥ ३२ ॥

अथोत्तानमंडूकासनविधिः।

मंडूकासनमध्यस्थं कूर्पराभ्यां धृतं शिरः ॥
एतद्भेकवदुत्तानमेतदुत्तानमंडुकम् ॥ ३३ ॥

अर्थ--मंडूकासनमें बैठकर हाथनके टकुनानिसों माथे

धारण करके उत्तान हो जावै इसहीको (घेरण्डऋषिने) उत्तानमंडूकासन कह्यौ है । इति ॥ ३३ ॥

अथ वृक्षासनविधिः ।

वामोरुमूलदेशे च याम्ये पादौ निधाय तु ॥
तिष्ठेत्तु वृक्षवद्भूमौ वृक्षासनमिदं विदुः ॥ ३४ ॥

अर्थ--दायें पाँय बाई जाँघकी जड (मूल) में धरैं और समानभावसे वृक्षकी भाँति (तरह) ठाडो रहे याको वृक्षासन कहैं हैं । इति ॥ ३४ ॥

अथ मंडूकासनविधिः ।

पादतलौ पृष्ठदेशे अंगुष्ठे द्वे च संस्पृशेत् ॥
जानुयुग्मं पुरस्कृत्य साधयेन्मंडुकासनम् ॥ ३५ ॥

अर्थ--दोनों पाँय पीठकी तरफ करके उनके दोनों अँगूठे परस्पर एकको एकसों मिलायके तथा दोनों जाँघ सामनेकी ओर धरे इस आसनको मंडूकासन कहैं हैं ॥ ३५ ॥

अथ गरुडासनविधिः ।

जंघोरुभ्यां धरां पीडच स्थिरकायो द्विजानुनी ॥
जानूपरि करं युग्मं गरुडासनमुच्यते ॥ ३६ ॥

अर्थ--दोनों जाँघोंसे तथा दोनों पींडुरीनसौं धरतीकों दबावे और दोनों पींडुरीनपै दोनों हाथ धेरै इसको गरुडासन कहें हैं । इति ॥ ३६ ॥

अथ वृषासनविधिः ।

याम्यगुल्फे पायुमूलं वामभागे पदेतरम् ॥
विपरीतं स्पृशेद्भूमिं वृषासनमिदं भवेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ-गुदाके द्वारको दक्षिण एडीके ऊपर धरके उसीके बाँये भागमें बाँये पाँयको उलट करके धरै और धरतीको छीमें इसको वृषासन कहते हैं ॥ ३७ ॥

अथ शलभासनविधिः ।

अधास्य शेते करयुग्मवक्षे भूमिमवष्टभ्य करयो-
स्तलाभ्याम् ॥ पादौ च शून्ये च वितस्ति चोर्ध्वं
वदन्ति पीठं शलभं मुनीन्द्राः ॥ ३८ ॥

अर्थ-नीचे मुख करके सोय जाय और वक्षस्थलमें दोनों हाथ धरके दोनों करतलोंसों माटी पकडकर दोनों पाँय शून्य भागमें विलाँदभर ऊँचे राखे याको नाम शलभासन मुनिजन कहै हैं । इति ॥ ३८ ॥

अथ मकरासनविधिः ।

अधास्य शेते हृदयं निधाय भूमौ च पादौ प्रसार्यमाणौ॥
शिरे च धृत्वा करदंडयुग्मे देहाग्निकारंमकरासनं तत् ३९॥

अर्थ-धरतीमें पेट धर सोय जाय और नीचे मुख करके छातीको धरतीमें लगायके और दोनों पाँय फैलाय दे फिर दोनों हाथनिसों माथो धारण करै याको मकरासन कहे हैं ॥ ३९॥

अथ उष्ट्रासनविधिः ।

अधास्य शेते पदयुग्मव्यस्तं पृष्ठे निधायापि धृतं
कराभ्याम् ॥ आकुंचयेत्सम्यगुदरास्यगाढं उष्ट्रं
च पीठं योगिनो वदंति ॥ ४० ॥

अर्थ-अधोवदन शयन करके दोनों पाँय उलटके पीठकी

ओर लावे पीछे दोनों हाथोंसे इन्ही पैरोंको धरके मुख और पेट दृढभावसों सकोड लेवे इसको उष्ट्रासन कहे हैं ॥ ४० ॥

अथ भुजंगासनविधिः ।

अंगुष्ठनाभिपर्य्यंतमधोभूमौ विनिन्यसेत्॥ करतलाभ्यां धरां धृत्वा ऊर्ध्वं शीर्षं फणीव हि ॥ ४१ ॥
देहाग्निर्वर्द्धते नित्यं सर्वरोगविनाशनम् ॥ जागर्ति भुजगीदेवी साधनाद् भुजगासनम् ॥ ४२ ॥

अर्थ—पाँयके अँगूठासे लेकर नाभिपर्यन्त देहकी नीची और वाएँ भाग धरातलमें अच्छी तरह स्थापन करके हाथसों दोनों पंजानको धरतीमें अवलंबन करे और सर्पके फनकी तरह शिरके भागको उठावे याको भुजंगासन कहे हैं ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

अथ योगासनविधिः ।

उत्तानौ चरणौ कृत्वा संस्थाप्य जानुनोपरि ॥
आसनोपरि संस्थाप्य उत्तानं करयुग्मकम् ॥ ४३ ॥
पूरकैर्वायुमाकृष्य नासाग्रमवलोकयेत् ॥
योगासनं भवेदेतद् योगिनां योगसाधने ॥ ४४ ॥

इति श्रीघेरण्डसंहितायां ऋषिघेरण्डनृपचंडकापालिसंवादे द्वात्रिंशासनवर्णनं नाम द्वितीयोपदेशः ॥ २ ॥

अर्थ—दोनों पाँयनिको चित्त कर दोनों जाँघोंके ऊपर संस्थापित करके दोनों हाथ उत्तानभावसे आसनके ऊपर राखे पीछे पूरक (प्राणायाम) के सार द्वारा पवन खेंचकें कुंभक (डाटै)

और उस समय नाकको आगेको भाग ताको देखे इसको योगासन कहते हैं। इति ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

इति श्रीघेरंडसंहिताश्रीमथुरास्थदक्षगोत्रोद्भवचातुर्वेदिशर्मश्री ५ कल्याणचंदात्मजराधाचंदविरचितव्रजभाषाटीकायां आसनवर्णनो नाम द्वितीयोपदेशः ॥ २ ॥

तृतीयोपदेशः ३।

अथ मुद्राकथनप्रकरणम्

महामुद्रा नभोमुद्रा उड्डीयान जलंधरम् ॥
मूलबंधो महाबंधो महावेधश्च खेचरी ॥ १ ॥
विपरीतकरी योनिर्वज्राणी शक्तिचालिनी ॥
ताडागी मांडवी मुद्रा शांभवी पंचधारिणी ॥ २ ॥
अश्विनी पाशिनी काकी मातंगी च भुजंगिनी ॥
पंचविंशतिमुद्राणि सिद्धिदानीह योगिनाम् ॥ ३ ॥

अर्थ--महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डीयान, जलंधर, मूलबंध, महाबंध, महावेध, खेचरी, विपरीतकरी, योनि, वज्राणी, शक्ति-चालिनी, ताडागी, मांडवी, शांभवी, धारणामुद्रा, पांच तरहकी है। जैसे-पार्थिवीधारणा आम्भसीधारणा वैश्वानरीधारणा वायवीधारणा, नभोधारणा और तापीछें अश्विनी, पाशिनी, काकी, मातंगी, भुजंगिनी ॥ इति ॥ १ ॥ २ ॥ ३ ॥

मुद्राणां पटलं देवि कथितं तव संनिधौ ॥
येन विज्ञातमात्रेण सर्वसिद्धिः प्रजायते ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन न देयं यस्य कस्यचित् ॥
प्रीतिदं योगिनां चैव दुर्लभं मरुतामपि ॥ ५ ॥

अर्थ--श्रीमहादेव गौरीसे बोले कि हे देवि ! मैंने तेरे आगे मुद्रानिके नाम कहे हैं । इनके जानवेसोंही सब भाँतिकी सिद्धिका लाभ होइ है । यह सब विषय परम गोपनीय है जिस किसीको कभी नहीं देना । क्योंकि विना प्रतिज्ञाके साधि हो नहीं सक्के और कदापि बतायभी दो तौ चंचल लोग दोषित करेंगे और न बन सकेंगे तौ इस विद्याको झूंठी कहकर दृढ प्रतिज्ञोंकोभी नहीं देना, ये सब मुद्रा योगियोंकोभी परम प्रीति देनेवारी है। यह मुद्रा देवताओंकोभी दुर्लभ हैं । इति ॥ ४ ॥ ५ ॥

अथ महामुद्राविधिः ।

पायुमूलं वामगुल्फे संपीड्य दृढयत्नतः ॥
याम्यपादं प्रसार्याथ करे धृतपदांगुलः ॥ ६ ॥
कण्ठसंकोचनं कृत्वा भ्रुवोर्मध्यं निरीक्षयेत् ॥
महामुद्राभिधा मुद्रा कथ्यते चैव सूरिभिः ॥ ७ ॥

अर्थ--गुदामूलको बाँई एडीसों बहुत ताकतसों दबावे और दाँये हाथको फैलायके हाथसों पाँयकी अंगुली धरै फिर कंठको सकोडके भौंहके मध्यमें ध्यान लगा देवे इसको पंडितगण महामुद्रा कहे हैं । इति ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ मुद्राफलम् ।

क्षयकासं गुदावर्तं प्लीहां जीर्णज्वरं तथा ॥
नाशयेत् सर्वरोगांश्च महामुद्रातिसेवनात् ॥ ८ ॥

अर्थ--उपरोक्त (महामुद्रा) को अधिक सेवन करवेसों क्षयसों भई खांसी, गुदावर्त (गुदाके चारों तर्फ वारे फोडा)

तापतिल्ली और जीर्ण ज्वर (पुराना ज्वर), तथा और सब तरहके रोग या महामुद्राके सेवनसों नाश होई है । इति ॥ ८ ॥

अथ नभोमुद्राविधिः ।

यत्र यत्र स्थितो योगी सर्वकार्येषु सर्वदा ॥
ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा धारयेत्पवनं सदा ॥
नभोमुद्रा भवेदेषा योगिनां रोगनाशिनी ॥ ९ ॥

अर्थ—जब जब योगी काहू काममें लगे तब तब सर्वदाही ऊपरकी ओर जीभ करकें कुंभकके द्वारा स्थिर होकर पवनको धारण किया करै यह अभ्यास सदा रखनेसे योगी समस्त रोगनिते निवृत्त होई हैं इसको नभोमुद्रा कहते हैं । इति॥ ९ ॥

अथ उड्डीयानबंधविधिः ।

उदरे पश्चिमं तानं नाभिरूर्ध्वं तु कारयेत् ॥
उड्डीयानं कुरुते यत् तद्विश्रान्तं महाखगः॥
उड्डीयानं त्वसौ बंधो मृत्युमातंगकेसरी ॥ १० ॥

अर्थ—नाडीके ऊपरका भाग पश्चिमद्वारको उदरके समभावमें सिकोडनों चाहिये अर्थात् उदरके मध्यम भागस्थ गुह्यादि चक्रस्थित नाडीसमूहकों नाभीके ऊपर सिकोडके उठानों चाहिये इसको उड्डीयान बंध कहते हैं यह उड्डीयान बंध मौतके लिये अर्थात् गजरूप मृत्युको सिंहके समान है । इति १०

अथ उड्डीयानबंधफलम् ।

समग्राद्बंधनादेतत् उड्डीयानं विशिष्यते ॥
उड्डीयानसमभ्यस्तेमुक्तिःस्वाभाविकी भवेत् ॥ ११ ॥

अर्थ–जितने मुद्राबंध कहे गये हैं उन सबमें यह उड्डीयान बंध बहुत उत्तम है इस उड्डीयान बंधके साधनसे आपही आप मुक्ति होई है । इति ॥ ११ ॥

अथ जालंधरबंधविधिः ।

कंठसंकोचनं कृत्वा चिबुकं हृदये न्यसेत् ॥
जालंधरकृते बंधे षोडशाधारबंधनम् ॥
जालंधरं महामुद्रा मृत्योश्च क्षयकारिणी ॥ १२ ॥

अर्थ–कंठको सकोड करके छातीपर डाढी धरवेहीसों जालंधरबंध कह्यौ जाय है याके साधन करवेसों सोलह भाँतिके आधार बंध हुआ करते हैं यह मौतकाभी नाशक है ॥ १२॥

अथ जालंधरबंधफलम् ।

सिद्धं जालंधरं बंधं योगिनां सिद्धिदायकम् ॥
षण्मासमभ्यस्येत् यो हि स सिद्धोनात्रसंशयः॥ १३॥

अर्थ–यह जालंधर बंध स्वयं सिद्ध है यह योगियोंको सिद्धि देवेवारौ है जो बुद्धिवान् छः महीना इसका साधन करता है वह अवश्य सिद्ध हो जाता है इसमें संशय नहीं है ॥ १३॥

अथ मूलबंधविधिः ।

पार्ष्णिना वामपादस्य योनिमाकुंचयेत्ततः ॥
नाभिग्रंथिं मेरुदंडं संपीड्य यत्नतः सुधीः ॥ १४ ॥
मेढ्रं दक्षिणगुल्फे तु दृढबंधं समाचरेत् ॥
जराविनाशिनी मुद्रा मूलबंधो निगद्यते ॥ १५ ॥

अर्थ–बाँये पाँयकी एडीसों गुदा प्रदेशको सिकोडे वा पीछे

टूंडीकी गाँठको पीठकी हड्डीसे दबावै और उपस्थको दाँये एडीसों मजबूत दबाके राखै इसकौ मूलबंध कहते हैं यह मुद्रा बुढापेको दूर करै है । इति ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ मूलबंधफलम् ।

संसारसागरं तर्तुमभिलषति यः पुमान् ॥
विरलेषु गुप्तो भूत्वा मुद्रामेनां समभ्यसेत् ॥ १६ ॥
अभ्यासाद्बंधनस्यास्य मरुत्सिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥
साधयेद्यत्नतस्तर्हि मौनी तु विजितालसः ॥ १७ ॥

अर्थ–जो मनुष्य संसारसागरसे पार होनेकी इच्छा करै वे एकान्तस्थानमें गुप्तभावसे इस मुद्राका अभ्यास करै इस मूलबंधके अभ्याससे जरूर पवन (वायु) सिद्धि होई है इसके साधक आलसकों छोडके मौनी हो यत्नपूर्वक इसको साधन करै ॥ १६ ॥ १७ ॥

अथ महाबंधफलम् ।

महाबंधः परो बंधो जरामरणनाशनः ॥
प्रसादादस्य बंधस्य साधयेत्सर्ववांछितम् ॥ १८ ॥

अर्थ–यह महाबंध (नामकी मुद्रा) सब मुद्राओंमें श्रेष्ठ है और बुढापे तथा मौतको नाश करै है इस महाबंधके प्रसादसों सब मनमाने मनोरथ पूर्ण होइ है ॥ १८ ॥

अथ महावेधविधिः ।

रूपयौवनलावण्यं नारीणां पुरुषं विना ॥
मूलबंधमहाबंधौ महावेधं विना तथा ॥ १९ ॥

महाबंधसमासस्य उड्डानकुंभकं चरेत ॥
महावेधः समाख्यातो योगिनां सिद्धिदायकः ॥२०॥

अर्थ-जैसे पुरुषके विना नारीको सुंदररूप यौवन (जवानी) तथा लावण्यता निष्फल रहती है । वैसेही महावेधमुद्राके विना मूलबंध तथा महाबंधभी काऊ कामके नहीं रहते । पहले महाबंध मुद्रा करै फिर उड्डीयानबंध मुद्रा करके कुंभक प्राणायामसे वायुको निरोध करवेहीसे महावेध मुद्रा कही जाती है यह मुद्रा महावेधके द्वारा योगिजन सर्वसिद्धिको पावे हैं ॥ १९ ॥ २० ॥

अथ महावेधफलम् ।

महाबंधमूलबंधौ महावेधसमन्वितौ ॥
प्रत्यहं कुरुते यस्तु स योगी योगवित्तमः ॥ २१ ॥
न मृत्युतो भयं तस्य न जरा तस्य विद्यते ॥
गोपनीयः प्रयत्नेन वेधोऽयं योगिपुंगवैः ॥ २२ ॥

अर्थ-जो साधक प्रतिदिन इस महावेधके सहित महाबंध और मूलबंधका साधन कियो करे हैं वेही योगियोंमें उत्तम योग विद्याके जानवेवारे कहे जाते हैं । मौत और बुढापा उनके पास कभी नहीं आय सक्ते । यह मुद्रा परम गुप्त रखवेके योग्य है योगीनमें श्रेष्ठ योगी इसको किसीसे नहीं कहते हैं ॥ २१ ॥ २२ ॥

अथ खेचरीमुद्राविधिः ।

जिह्वाधो नाडीं संछिन्नां रसनां चालयेत्सदा ॥
दोहयेन्नवनीतेन लोहयंत्रेण कर्षयेत् ॥ २३ ॥

एवं नित्यं समभ्यासाल्लम्बिका दीर्घतां व्रजेत् ॥
यावद्गच्छेदभ्रुवोर्मध्ये तथा गच्छति खेचरी ॥ २४ ॥
रसना तालुमध्ये तु शनैः शनैः प्रवेशयेत् ॥
कपालकुहरे जिह्वा प्रविष्टा विपरीतगा ॥
भ्रुवोर्मध्ये गतां दृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥ २५ ॥

अर्थ-जीभके नीचे जीभकी जड और जीभ इन दोनोंको जो नाडी जोडे रहती है उसको काट देवे और नित्यही जिह्वाके अग्रभाग और जिह्वा (जीभ) के नीचे सदा चलाया करै । और जीभको नवनीत (माखन) से दुहा करै और लोहेकी (चीमटा) सों खेंच लेय । याही प्रकार रोज करनेसे जीभ लंबी हो जाती है । क्रमसे अभ्यास करते करते जीभको इस प्रकार लंबी कर देय कि जासों दोनों भौंहोंके बीचतक पहुँच जाय । फिर उसी जीभको क्रमसे तालुके बीच ले जाय । तालु देश मध्यस्थ (गड्ढाको) कपालकुहर कहते हैं । जीभको उसी तालुके गड्ढामें ऊपरकी ओर उलटके प्रवेशित करै ता पीछे दोनों भौंहनिके मध्य (बीच) के भागको देखे याको खेचरी मुद्रा कहे हैं ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

अथ खेचरीमुद्राफलम् ।

न च मूर्च्छा क्षुधा तृष्णा नैवालस्यं प्रजायते ॥
न च रोगो जरा मृत्युर्देवदेहः स जायते ॥ २६ ॥

अर्थ-जो मनुष्य या खेचरी मुद्राको साधन करे हैं उनको मूर्च्छा भूँख प्यास और आलस्य नहीं होई है और न रोग

न बुढापौ न मौत पास आवे और देवतानकीसी ताकी देह हो जाय ॥ २६ ॥

नाग्निना दह्यते गात्रं न शोषयति मारुतः ॥
न देहं क्लेदयन्त्यापो दंशयेन्न भुजंगमः ॥ २७ ॥

अर्थ–और उनको आग नहीं जलाय सके पवन सुखाय नहीं सके तथा पानी न गीला कर सके तथा साँप काट नहीं सके है ॥ २७ ॥

अथ विपरीतकरीमुद्राविधिः ।

नाभिमूले वसेत्सूर्यस्तालुमूले च चंद्रमाः ॥
अमृतं ग्रसते सूर्यस्ततो मृत्युवशो नरः ॥ २८ ॥
ऊर्ध्वं च गमयेत्सूर्यं चंद्रं च अध आनयेत् ॥
विपरीतकरी मुद्रा सर्वतंत्रेषु गोपिता ॥ २९ ॥
भूमौ शिरश्च संस्थाप्य करयुग्मे समाहितः ॥
ऊर्ध्वपादः शिरो भूत्वा विपरीतकरी मता ॥ ३० ॥

अर्थ–नाभिकी जडमें सूर्य (सूर्यनाडी) वास करै है और मुखके तलुआकी जडमें चंद्रमा (चंद्रनाडी) वास करै है जब नीचेसे सूर्य अपने तेजसों खेंचवेसों देहमें रहवेवारौ अमृतको ग्रास कर लेय है तब मनुष्य मौतके वश होइ है । यालिये ऊपरकी ओरसों सूर्यकों उठानों चाहिये और नीचेकी ओरसों चंद्रमाको ले आनों चाहिये इसका नाम विपरीतकरी मुद्रा है सो सब तंत्रोंसे गुप्त है अर्थात् अंत कहुँ नहीं कही गई । याकी विधि इसी तरह है कि धरतीमें माथेकों धरे और दोनों हाथ-निसों धरतीको पकडकर पाँयनिको ऊपरकी ओर उठायके

सीधा खडा करै और पूरक प्राणायामसे पवन खेंचकर कुंभकके द्वारा जहांतक ठहरे तबतक ठहरावे इसको विपरीतकरी मुद्रा कहते हैं । इति ॥ २८ ॥ २९ ॥ ३० ॥

अथ विपरीतकरीमुद्राफलम् ।

मुद्रेयं साधयेन्नित्यं जरां मृत्युं च नाशयेत् ॥
स सिद्धः सर्वलोकेषु प्रलयेऽपि न सीदति ॥ ३१ ॥

अर्थ–जो मनुष्य इस मुद्राको रोज साधन करता है वह बुढापा और मृत्युसे बच्यो रहे है । फिर सब लोकनिमें सिद्ध हो जाता है और प्रलय होनेपरभी अभय रहता है ॥ ३१ ॥

अथ योनिमुद्राविधिः ।

सिद्धासनं समासाद्य कर्ण चक्षुर्नसो मुखम् ॥
अंगुष्ठतर्जनीमध्यानामादिभिश्च साधयेत् ॥ ३२ ॥
काकीभिः प्राणसंकृष्य अपाने योजयेत्ततः ॥
षट्चक्राणि क्रमाद्ध्यात्वा हुं हंस मनुना सुधीः ॥ ३३ ॥
चैतन्यमानयेद्देवीं निद्रिता या भुजंगिनी ॥
जीवेन सहितां शक्तिं समुत्थाप्य करांबुजे ॥ ३४ ॥
शक्तिमयः स्वयं भूत्वा परं शिवेन संगमम् ॥
नानासुखं विहारं च चिंतयेत्परमं सुखम् ॥ ३५ ॥
शिवशक्तिसमायोगादेकान्तं भुवि भावयेत् ॥
आनंदं च स्वयं भूत्वा अहं ब्रह्मेति संभवेत् ॥ ३६ ॥
योनिमुद्रा परा गोप्या देवानामपि दुर्लभा ॥
सकृत्तु लाभसंसिद्धिः समाधिस्थः स एव हि ॥ ३७ ॥

अर्थ–प्रथम सिद्धासनसों बैठे फिर कान आँख नाक मुख ये चारों द्वारोंको अँगूठा तर्जनी मध्यमा अनामिका इन अँगुरियनसों ढाँक लेय अर्थात् कानके दोनों छेदोंको दोनों अँगुठानसों दोनों आँखनकों दोनों तर्जनीनसों दोनों नाकके छेदोंको दोनों मध्यमानसों, मुखकों दोनो अनामिकानसों दाबै । फिर या मुद्रासों प्राणपवनकों खेंचै और फिर उसे अपानपवन (अधोवायु) में मिलाय दे वाके बाद अंगमें छः चक्र है उनका ध्यान करै वाही समयमें (हुँ) और (हंस) इन दो मंत्रोंसे भुजंगिनी रूप कुंडलिनी देवीकों जगावै तथा जीवात्मा सहित वा कुंडलिनीको सहस्र कमलमें उठायकें ले जावै और वह साधक या प्रकार चिंता करे मानों मैं शक्तिमय होकर शिव (आनंद) के संगप्रसंगमें आसक्त होते भये परम आनंद भोग और विहार करता हूं तथा शिवशक्तिके संयोगसे मैंही आनंदमय (ब्रह्म हूं) इसको योनिमुद्रा कहते हैं यह मुद्रा परम गोपनीय है यह देवताओंको दुर्लभ है या मुद्राको एकवारभी कोई साधन करै तौ साधनेवारो पुरुष सिद्ध हो जाय है इसके द्वारा बहुतही शीघ्र समाधि प्राप्त होवे है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

अथ योनिमुद्राफलम् ।

ब्रह्महा भ्रूणहा चैव सुरापी गुरुतल्पगः ॥
एतैः पापैर्न लिप्यंते योनिमुद्रानिबंधनात् ॥ ३८ ॥
यानि पापानि घोराणि उपपापानि यानि च ॥
तानि सर्वाणि नश्यन्ति योनिमुद्रानिबंधनात् ॥
तस्मादभ्यासनं कुर्याद्यदि मुक्तिं समिच्छति ॥ ३९ ॥

अर्थ—जो जन योनिमुद्राकौ साधन करैहैं वे यदि ब्रह्मघाती (ब्राह्मणकों मारवेवारौ) बालघाती वा गर्भ गिरायवेवारौ दारू पीवेवारौ गुरुकी नारीसों मैथुन करवेवारौभी होइ तौभी पापमें नहीं सने है । औरभी जो बडे बडे पाप हैं तथा उपपाप हैं तिन सबकों योनिमुद्राकौ बांधवेवारो नष्ट कर देय है या कारण जो मुक्तिकी इच्छा करे सो याको साधन करै । इति ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

अथ वज्रोणिमुद्राविधिः ।

धरामवष्टभ्य करयोस्तलाभ्यां ऊर्ध्वे क्षिपेत्पादयुगं शिरः खे ॥ शक्तिप्रबोधाय चिरजीवनाय वज्रोणिमुद्रा मुनयो वदन्ति ॥ ४० ॥

अर्थ—दोनों हाथनिकी हथेरीसों धरनीके तलकों पकडकें दोनों पाँयनिकों ऊपर उठाय दै और माथौभी आकाशकी ओर उठा देवे केवल हाथके बल खडा रहै इसको मुनि (जन) वज्रोणि मुद्रा कहें हैं याके अभ्यासमों अंगमें शक्ति (ताकत) आवे और सदा जिया करै अर्थात् अमर हो जावै । इति४० ॥

अथ वज्रोणिमुद्राफलम् ।

अयं योगे योगश्रेष्ठो योगिनां मुक्तिकारणम् ॥
अयं हितप्रदो योगो योगिनां सिद्धिदायकः ॥ ४१ ॥
एतद्योगप्रसादेन बिंदुसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् ॥
सिद्धे बिंदौ महायत्ने किं न सिध्यति भूतले ॥ ४२॥
भोगेन महता युक्तो यदि मुद्रां समाचरेत् ॥
तथापि सकला सिद्धिर्भवति तस्य निश्चितम् ॥ ४३॥

अर्थ–यह मुद्रा साधनरूपी योगमें सब योगोंमें अच्छा (श्रेष्ठ) है और योगियोंकी मुक्ति (मोक्ष) कारण है और यह योग बहुत हितका करनेवारो है तथा योगियोंको सब तरहकी सिद्धिको देवेवारो है। इसी योगके प्रसादसे कामसिद्धि, बिंदु जो (वीर्य) सिद्धि निश्चय होइ है अर्थात् वीर्य रुक गया और जब इस भाँति महायत्नसे वीर्यसिद्धि हो गये पीछे कहो भूतलमें कौन और सिद्धि न होइगी। और सबेरे बडे बडे भोगोंसे युक्त पुरुषभी यदि इस मुद्राका अभ्यास करै तौ सब भाँतिकी सिद्धियाँ जरूर उसकों मिलेंगी। इति ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

अथ शक्तिचालनीमुद्राविधिः।

मूलाधारे आत्मशक्तिः कुंडली परदेवता ॥
शयिता भुजगाकारा सार्द्धत्रिवलयान्विता ॥ ४४ ॥
यावत्सा निद्रिता देहे तावज्जीवं पशुर्यथा ॥
ज्ञानं न जायते तावत् कोटियोगं समभ्यसेत् ॥ ४५ ॥

अर्थ–मूलाधारमें आत्मशक्ति (आत्माकी ताकत) सबसों परे देवता कुंडलिनी सर्पके आकार साढे तीन लपेटाकी गुंडरी (गोला) बांधे सोय रही है। जबतक वह देहमें सोती रहै है तबतक जीव पशुकी तरह अज्ञान (ज्ञानरहित) बन्धो रहै है सत्य और असत्य कछु नहीं जान पडता तबतक चाहें कोटिप्रकार योगाभ्यास करो कभी सत्य ज्ञान नहीं होइगो ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

उद्घाटयेत्कपाटं च यथा कुंचिकया हठात् ॥
कुंडलिन्याः प्रबोधेन ब्रह्मद्वारं प्रबोधयेत् ॥ ४६ ॥

अर्थ-इसी निमित्त कहा है कि जैसे तारेसों बंद किवार (कपाट) तारीसे झटपट खोलकें भीतर पैठ जाय याही भाँति कुंडलिनीके जानवेपर ब्रह्मद्वार (माथे) को प्रभेद कियो जा सके हैं (चैतन्य कियो जाय है) कि जासों सत्य और असत्यकौ ज्ञान होइ हैं ॥ ४६ ॥

नाभिं संवेष्ट्य वस्त्रेण न च नग्नो बहिः स्थितः ॥
गोपनीये गृहे स्थित्वा शक्तिचालनमभ्यसेत् ॥ ४७ ॥

अर्थ-एक वस्त्रके द्वारा नाभिदेशकों लपेटके काऊ गुप्त मकानमें बैठकर शक्तिचालनी मुद्राका अभ्यास करै किंतु नंगो ह्वेकें बाहरके भागमें या योगका साधन करनों उचित है नहीं, अर्थात् यह योग नंगो ह्वेकें गुप्तस्थानमें करनों चाहिये॥ ४७॥

वितस्तिप्रमितं दीर्घं विस्तारे चतुरंगुलम् ॥
मृदुलं धवलं सूक्ष्मं वेष्टनाम्बरलक्षणम् ॥
एवमम्बरयुक्तं च कटिसूत्रेण योजयेत् ॥ ४८ ॥

अर्थ-एक बिलाँद लम्बो और चार अंगुल चौडो कोमल (नरम) और महीन सुपेद कपाडासों नाभिकों लपेटकें फिर उस वस्त्रको कमरसों बांधे ॥ ४८ ॥

भस्मना गात्रसंलिप्तं सिद्धासनं समाचरेत् ॥
नासाभ्यां प्राणमाकृष्य अपाने योजयेद्बलात् ॥४९॥
तावदाकुंचयेद्गुह्यं शनैरश्विनिमुद्रया ॥
यावद्गच्छेत्सुषुम्नायां वायुः प्रकाशयेद्धठात् ॥ ५० ॥

अर्थ-राखसों अंगकों लपेट (लेपन) करै और सिद्धासन

बाँधकर बैठे और नाकके दोनों छेदनसों प्राणवायु (हृदयस्थ पवन) कों खैंचकें बलके सहित अपानवायुके संग मिलाय दे जबतक वायु सुषुम्नानाडीके भीतर जायकें प्रकाशित न हो तबतक अश्विनीमुद्राके द्वारा धीरे धीरे गुह्यप्रदेश (गुदा) कों सकोडे ॥ ४९ ॥ ५० ॥

तदा वायुप्रबंधेन कुंभिका च भुजंगिनी ॥
बद्धश्वासस्ततो भूत्वा ऊर्ध्वमार्गं प्रपद्यते ॥ ५१ ॥

अर्थ–याही भांति निश्वास रोककें कुंभक प्राणायाम धारण करै तौ भुजंगिनी भुजंगाकार कुंडलिनीशक्ति जागकें ऊपरकी ओर उठती है अर्थात् हजार दल कमल परमात्मामें मिल जाती है ॥ ५१ ॥

विना शक्तिं चालनेन योनिमुद्रा न सिद्ध्यति ॥
आदौ चालनमस्यास्तु योनिमुद्रां समभ्यसेत् ॥५२॥

अर्थ–विना शक्तिचालनी मुद्राके अभ्यास किये योनिमुद्रा कभी सिद्धि नहीं हो सकै है यासों पहिले या शक्तिचालनी मुद्राकौ अभ्यास कर ले तब योनिमुद्राकौ अभ्यास करै॥ ५२ ॥

इति ते कथितं चंडकापाले शक्तिचालनम् ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन दिने दिने समभ्यसेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ–घेरंड महाराज कहते हैं कि हे चंडकापालि ! तुम्हारे आगे यह मैंने मुद्रा कही जाकौ नाम शक्तिचालनी है यह मुद्रा यत्नसों दिन दिन अभ्यास करनो चाहिये और वह अभ्यास करनों गुप्त भावसों रहै सहसा प्रसिद्ध जाहिर न होयवे पावै ५३ ॥

अथ शक्तिचालनमुद्राफलम् ।

मुद्रेयं परमा गोप्या जरामरणनाशिनी ॥
तस्मादभ्यासनं कुर्याद्योगिभिः सिद्धिकांक्षिभिः ५४ ॥

अर्थ—यह मुद्रा परम गुप्त है याके द्वारा बुढापौ और मृत्यु दोनों नष्ट हो जाय हैं याहीसों सिद्धिके चाहवेवारे योगियोंको इसका अभ्यास जरूर करनों चाहिये ॥ ५४ ॥

नित्यं योऽभ्यसते योगी सिद्धिस्तस्य करे स्थिता ॥
तस्य विग्रहसिद्धिः स्याद्रोगाणां संक्षयो भवेत् ॥ ५५ ॥

अर्थ—जो योगी या मुद्राकों प्रतिदिन अभ्यास करै है वाके हाथमें सिद्धि आय जाय है और उसको विग्रहसिद्धि होय है (विग्रहसिद्धि वाकों कहैं हैं जामें विशेष ग्रहणकी शक्ति हो जाय है) अर्थात् कोई काम करै झटपट पूरो हो जाय है और वाके रोग दूर हो जाय हैं ॥ ५५ ॥

उदरं पश्चिमोत्तानं कृत्वा च तडागाकृति ॥
ताडागी सा परा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥ ५६ ॥

अर्थ—पश्चिमोत्तान अर्थात् उत्तान होकर पडै और पेटको तडाग (तालाव) की तरह गहरौ करै और कुंभक प्राणायाम करै इसकौ ताडागी मुद्रा कहैं हैं यह मुद्रा एक प्रधान गिनी जाय है याके द्वारा बुढापौ और मौत जीती जाय है । इति ॥ ५६ ॥

अथ मांडूकीमुद्राविधिः ।

मुखं संमुद्रितं कृत्वा जिह्वामूलं प्रचालयेत् ॥
शनैर्ग्रसेदमृतं तां मांडुकीमुद्रिकां विदुः ॥ ५७ ॥

अर्थ—मुखको मूंदकें जीभकी जडकों तालुवेके उपरकी ओर चलावै और धीरे धीरे हजारदल कमल निर्गत अमृत पान करै इसको मांडुकीमुद्रा कहते हैं । इति ॥ ५७ ॥

अथ मांडूकीमुद्राफलम् ।

वलितं पलितं नैव जायते नित्ययौवनम् ॥
न केशे जायते पाको यः कुर्यान्नित्यमांडुकीम् ॥ ५८ ॥

अर्थ—मांडुकी मुद्राका नित्य अभ्यास जो कोई करै उसके अंगमें वलित (खालको सुकड जानों), पलित (वारनको सुपेद हो जानों) तथा मांस गलकर हाड मात्रको रहनों ये नहीं होंय और सदा यौवन (जवानही) बन्यो रहे (अर्थात्) मौत नहीं आवे और बाल पके नहीं (अर्थात् सुपेद नहीं होवे) इति ॥ ५८ ॥

अथ शांभवीमुद्राविधिः ।

नेत्रांजनं समालोक्य आत्मारामं निरीक्षयेत् ॥
सा भवेच्छांभवी मुद्रा सर्वतंत्रेषु गोपिता ॥ ५९ ॥

अर्थ—दोनों भौंहनिके बीचमें वा दोनों भौंहोंकोही स्थिर दृष्टिसों अवलोकन करकें और मनको एक रस करके वही आत्माराम (परमात्मा) को देखे (मानों सच्चिदानंद वहीं बैठ्यो है) याहीको शांभवी मुद्रा कहे हैं यह सब तंत्रोंसे गुप्त मानी गई है । इति ॥ ५९ ॥

अथ शांभवीमुद्राफलम् ।

वेदशास्त्रपुराणानि सामान्यगणिका इव ॥
इयं तु शांभवी मुद्रा गुप्ता कुलवधूरिव ॥ ६० ॥

अर्थ–चारों वेद छहों शास्त्र (न्यायादि यथा धर्मशास्त्र) अठारह पुराण ये सब जैसे गणिका (रंडी) लोगप्रसिद्ध रहती हैं किसीसे गुप्त नहीं रहती तैसेही सामान्य वस्तु है परंतु शांभवी मुद्रा जैसे कुलवधू (अच्छे घरकी स्त्री) बडी यत्नसों रहैं और सहसा काउकी आंखनिके आगे नहीं आवे वैसेही यह मुद्रा जाननी ॥ ६० ॥

स एव आदिनाथश्च स च नारायणः स्वयम् ॥
स च ब्रह्मा सृष्टिकारी यो मुद्रां वेत्ति शांभवीम्॥६१॥

अर्थ–जो मनुष्य या शांभवी मुद्राकों जाने है वह आदि-नाथ (सबको प्रथम स्वामी) है वही स्वयं नारायण (जीवसमूहकी जीवनशक्ति तथा रवि) है और वही जगत्को पैदा करवेवारो ब्रह्माभी समझनों ॥ ६१ ॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं सत्यमुक्तं महेश्वरः ॥
शांभवीं यो विजानीयात् स च ब्रह्मा न चान्यथा ६२॥

अर्थ–जो मनुष्य या शांभवी मुद्राको जानता है वही मूर्तिमान् ब्रह्म है (परमेश्वर) है या बातकों महादेवजी तीन वार (त्रिवाचा) करके सत्य कहते हैं यामें झूँठ नहीं है ॥६२ ॥

अथ पंचधारणमुद्राः ।

कथिता शांभवी मुद्रा शृणुष्व पंचधारणम् ॥
धारणानि समासाद्य किं न सिद्ध्यति भूतले॥६३॥

अर्थ–घेरंड महाराज कहते हैं कि शांभवीमुद्रा तो कह आये अब हे चंडकापाली ! तुम पंचधारणा मुद्रा सुनों यह

पंचधारणामुद्राभी पांच प्रकारकी है जिन पाँचोंके प्राप्त होयवे पैं फिर भूतलमें कौन ऐसी बात है जो सिद्ध न हों अर्थात् सब सिद्ध हो जाय हैं । इति ॥ ६३ ॥

अनेन नरदेहेन स्वर्गेषु गमनागमम् ॥
मनोगतिर्भवेत्तस्य खेचरत्वं न चान्यथा ॥ ६४ ॥

अर्थ–ये पाँच प्रकारकी धारणा मुद्रा सिद्ध होनेपर इसी नरदेहसों (विना मरे) जीतेही स्वर्गलोकमें आनो जानो हो सके है और उस साधन करवेवालोंकी मनोगति (चाहे जहां जाय) जाय सकै है तथा खेचरत्व (आकाशमें उडवेकी शक्ति) प्राप्त हो जाती है पांच प्रकारकी धारणा पहिले कह आये हैं जैसे पार्थिवी १, आंभसी २, वायवी ३, आग्नेयी ४, आकाशी ५ । इति ॥ ६४ ॥

अथ पार्थिवीधारणामुद्राविधिः ।

यत्तत्वं हरितालदेशरचितं भौमं लकारान्वितम् ॥
वेदास्रंकमलासनेनसहितंकृत्वा हृदिस्थायिनम्॥६५॥
प्राणास्तत्र विनीय पंचघटिकां चितान्वितां धारये- ॥
देषाशांभकरीभवेत्क्षितिजयं कुर्यादधोधारणा ॥६६॥

अर्थ–धरतीतत्त्वका वर्ण हरितालके समान पीला है या धरतीतलका बीज लकार है इसका आकार चौकोन बराबर है ब्रह्मा याके देवता हैं योगके प्रभावसे उक्त सब बीजनके सहित हृदयमें ध्यानकर स्थापित करै उस समयमें प्राण वायुकों खेंचकरकें कुंभकके द्वारा पांच घडी (दो घंटा) मन न डिगवे पावे

धारणा किये रहै इसी स्तंभकरी (श्वास ठहरायवेवारी) क्रियाकों पार्थिवीधारणा कहते हैं याको दूसरो नाम (अधोधारणाभी है) याको धारण करवेसों धरती जीती जाय है अथात् धरतीसंबंधी कोईभी बाधा होइ तौ याके धारण करवेसों धारकको कछुभी विघ्न नहीं होता । इति ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अथ पार्थिवीधारणामुद्राफलम् ।

पार्थिवीधारणामुद्रां यः करोति तु नित्यशः ॥
मृत्युंजयः स्वयं सोऽपि स सिद्धो विचरेद्भुवि ॥६७॥

अर्थ--जो नर रोज या पार्थिवी धारणामुद्राकों करता है वही स्वयं मृत्युंजय हो जाता है (अर्थात् कभी नहीं मरता) और वोही सिद्ध होके धरतीमें विचऱ्यो करै है ॥ ६७ ॥

अथ आंभसीधारणामुद्राविधिः ।

शंखेन्दुप्रतिमं च कुंदधवलं तत्त्वं किलालं शुभम् ॥
तत्पीयूषवकारबीजसहितं युक्तं सदा विष्णुना ॥६८॥
प्राणांस्तत्र विनीय पंचघटिकां चित्तान्वितो धारयेत्॥
तेषां दुःसहतापपापहरिणीस्यादांभसी धारणा॥६९॥

अर्थ—जलतत्वका वर्ण शंख तथा चंद्रमाकी तुल्य विमल और कुंदपुष्पकी तरह उज्ज्वल है और शोभन है और याकी अमृत संज्ञा है और वकार याको बीज है और विष्णु याके देवता हैं योगके प्रभावसों हृदयके बीच उक्त जल तत्त्वके समुदायका ध्यान करै और उसी समय प्राणपवनकों खैंचके पांच घडी चित्त स्थिर करके कुंभक प्राणायाममें स्थिर रहै या-

हीकों आंभसीधारणामुद्रा कहते हैं यह मुद्रा बडे २ दुःसह ताप (त्रय) तथा पापनिकों नाश करै है । इति ॥ ६८ ॥ ६९ ॥

अथांभसीमुद्राफलम् ।

आंभसीं परमां मुद्रां यो जानाति स योगवित् ॥
जले च गंभीरे घोरे मरणं तस्य नो भवेत् ॥ ७० ॥

अर्थ-जो साधक या आंभसीमुद्राकों जानता है वही योगवित (योगको साधवेवारो) है वह यदि महाभयानक और गंभिर (गहरे) जलमेंभी पडकरभी मौतको प्राप्त नहीं होइ है अर्थात् श्वाससाधनसों जलमें डूबभी नहीं सकै है ॥ ७० ॥

इयं तु परमा मुद्रा गोपनीया प्रयत्नतः ॥
प्रकाशात्सिद्धिहानिःस्यात्सत्यं वच्मि च तत्त्वतः ७१

अर्थ-यह मुद्रा बडी गुप्त है और यत्नसहित याकों जाहिर न करनी याके जाहिर होवेसों सिद्धि (काम) की हानि होइ है यह मैं विचारकें सांच कहों हों ॥ ७१ ॥

अथाग्नेयीमुद्राविधिः ।

यन्नाभिस्थितमिंद्रगोपसदृशं बीजं त्रिकोणान्वितम् ।
तत्त्व तेजमयं प्रदीप्तमरुणं रुद्रेण यत्सिद्धिदम् ॥
प्राणांस्तत्र विनीय पंचघटिकां चित्तान्वितं धारयेत ।
एषा कालगभीरभीतिहरिणी वैश्वानरी धारणा॥७२

अर्थ-अग्नितत्त्वको स्थान नाभिस्थल है याको रंग इंद्रगोप (बीरबहुटी) की तरह लाल है रकार याको बीज है याको आकार त्रिकोण और रुद्र याके देवता हैं यह तत्त्व तेजका

समूह है यह दीप्तमान (प्रकाशमान) और सिद्धिदायक है योगवलसों या अग्नितत्त्वकों उदय करायकें एकाग्रचित्त हो पांच घडीतक कुंभकप्राणायामसे प्राणवायु (हृदयमें रहवे-वारी पवन) कों धारण करै इसका नाम आग्नेयी धारणा मुद्रा है याके अभ्याससों संसारका भय (डर) दूर हो जाय है और अग्निके द्वारा साधककी मृत्यु (मौत) कभी नहीं हो सकेगी इति ॥ ७२ ॥

अथाग्नेयीधारणामुद्राफलम् ।

प्रदीप्ते ज्वलिते वह्नौ पतितो यदि साधकः ॥
एतन्मुद्राप्रसादेन स जीवति न मृत्युभाक् ॥ ७३ ॥

अर्थ—यदि साधक बहुत जरती भई धकधकाती आगमें गिर पडै तौभी या आग्नेयीधारणामुद्राके प्रसादसे जीतो रहेगो कभी मृत्युका भागी नहीं होगा ॥ ७३ ॥

अथ वायवीधारणामुद्राविधिः ।

यद्भिन्नांजनपुंजसन्निभमिदं धूम्रावभासं परम् ।
तत्त्वं सत्त्वमयं यकारसहितं यत्रेश्वरो देवता ॥
प्राणांस्तत्र विनीय पंचघटिकां चित्तान्वितां धारये- ।
देषा खे गमनं करोति यमिनां स्याद्वायवी धारणा७४

अर्थ—वायुतत्वको रंग घिस्यो भयो अंजन (सुर्मा) तथा धुएकी तरह है यकार याकौ बीज है और ईश्वर याकौ देवता है यह तत्व सत्वगुणमय है योगके प्रभावसों या वायु (पवन) तत्वकों उदित करायकें एकाग्रचित्त हो प्राणवायुकों खेंच-

कर कुंभकप्राणायामके द्वारा पांच घडीतक धारण करै इसका नाम वायवी मुद्रा है यह मुद्रा साधन करवेवारेको वायुसे कभी मृत्यु नहीं हो सक्ती और साधककी सामर्थ्य आकाशमें जाने आनेकी हो जाती है ॥ ७४ ॥

अथ वायवीधारणामुद्राफलम् ।

इयं तु परमा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥
वायुना म्रियते नापि खे च गतिप्रदायिनी ॥ ७५ ॥

अर्थ–यह मुद्रा परम श्रेष्ठ है बुढापे और मौत इन दोनोंको नाश करती है और साधक वायुके किसी प्रकारके कोपसों नहीं मर सक्ता और यह मुद्रा आकाशगमनकी सामर्थ्यकों देवेवारी है ॥ ७५ ॥

शठाय भक्तिहीनाय न देया यस्य कस्यचित् ॥
दत्ते च सिद्धिहानिः स्यात्सत्यं वच्मि च चंड ते॥७६॥

अर्थ–घेरंडमहाराज बोले कि हे चंडकापालि ! या मुद्राकी विधि मूर्ख तथा जाके हृदयमें भक्ति न हो ऐसेनकों कभी नहीं बतानी चाहिये और हर काऊकों नहीं देना और शठादिकनको देनेसो बतायवेवारेकों सिद्धि नहीं होइ यह तुमसे मैंने साच कहा है ॥ ७६ ॥

अथ आकाशीधारणामुद्राविधिः ।

यत्सिंधौ वरशुद्धवारिसदृशं व्योमं परं भासितम् ।
तत्त्वं देवसदाशिवेन सहितं बीजं हकारान्वितम् ॥

प्राणांस्तत्र विनीय पंचघटिकां चित्तान्वितं धारये- ।
देषा मोक्षकपाटभेदनकरी कुर्यान्नभोधारणा ॥ ७७ ॥

अर्थ–आकाशतत्वका रंग समुद्रके विशुद्ध जलकी तरह प्रकाशित होता है सदाशिव याके देवता है हकार याकौ बीज है इसी आकाशतत्वकों सदाशिवके सहित योगप्रभावसे उदित एकाग्रमन होकर ध्यान करै और वाही समय प्राणवायुको खैंचकर कुंभकप्राणायामसे पांच घडी धारण किये रहै इसीको आकाशीधारणा कहते हैं यह मुद्रा मोक्ष (मुक्ति) के किवार-नकों खोल देय है ॥ ७७ ॥

अथाकाशीधारणामुद्राफलम् ।

आकाशीधारणां मुद्रां यो वेत्ति सैव योगवित् ॥
न मृत्युर्जायते तस्य प्रलये नावसीदति ॥ ७८ ॥

अर्थ–जो मनुष्य आकाशीमुद्राको जानता है वही निश्चय योगको जानवेवारो है उसकी मृत्युभी किसीसे नहीं होती है और प्रलय होनेपरभी ज्योंका त्यौं बन्यो रहै है । इति ॥ ७८ ॥ इति पंचधारणामुद्राः समाप्ताः ।

अथ अश्विनीमुद्राविधिः ।

आकुंचयेद्गुदद्वारं प्रकाशयेत्पुनः पुनः ॥
सा भवेदश्विनीमुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी ॥ ७९ ॥

अर्थ--साधक फिर फिर अपने गुदाके मुखकों सकोडे और फैलावै याहीको नाम अश्विनीमुद्रा है यह मुद्रा शक्ति (ताकत) को बढायवेवारो है । इति ॥ ७९ ॥

अथाश्विनीमुद्राफलम् ।

अश्विनी परमा मुद्रा गुह्यरोगविनाशिनी ॥
बलपुष्टिकरी चैव अकालमरणं हरेत् ॥ ८० ॥

अर्थ--यह श्रेष्ठ मुद्रा अश्विनी गुदा (गांड) के सबरे रोगनकौ नाश करे है और बल और पुष्टिताकों बढावे है और अकाल मरण (बेसमय मरवेकों) हर लेती है ॥ ८० ॥

अथ पाशिनीमुद्राविधिः ।

कंठे पृष्ठे क्षिपेत्पादौ पाशवं दृढबंधने ॥
सा एव पाशिनी मुद्रा शक्तिप्रबोधकारिणी ॥ ८१ ॥

अर्थ--दोनों पाँय कंठकी पीठमें डालकर जैसें पाश (रस्सा) सों बाँध्यो जाय है वैसेंही दृढ (ताकतसो) बाँधे यही पाशनी मुद्रा कही जाय है यहभी शक्ति (बल) को जगावे है । इति ॥ ८१ ॥

अथ पाशिनीमुद्राफलम् ।

पाशिनी महती मुद्रा बलपुष्टिविधायिनी ॥
साधनीया प्रयत्नेन साधकैः सिद्धिकांक्षिभिः ॥८२॥

अर्थ--यह पाशिनी एक बडी भारी मुद्रा है यह बल और पुष्टि (अंग बढाना) तथा सिद्धि चाहवेवारे साधक लोग इसको जरूर बडे यत्नसों साधन करे ॥ ८२ ॥

अथ काकीमुद्राविधिः ।

काकचंचुवदास्येन पिबेद्वायुं शनैः शनैः ॥
काकीमुद्रा भवेदेषा सर्वरोगविनाशिनी ॥ ८३ ॥

अर्थ--अपने मुखकों कौआकी चोंचके तरह बनायकें धीरे धीरे वायु पीवे इसका नाम काकीमुद्रा है यह सब तरहके रोगनकों दूर करै है ॥ ८३ ॥

काकीमुद्रा परा मुद्रा सर्वतंत्रेषु गोपिता ॥
अस्याः प्रसादमात्रेण काकवन्नीरुजो भवेत् ॥८४ ॥

अर्थ--यह काकीमुद्रा बहुत उत्तम है और सब तंत्रनिमें गुप्त है इसके प्रसाद (प्रताप) सों मनुष्य काककी तरह रोगरहित हो जाय है । इति ॥ ८४ ॥

अथ मातंगिनीमुद्राविधिः ।

कंठमग्ने जले स्थित्वा नासाभ्यां जलमाहरेत् ॥
मुखान्निर्गमयेत्पश्चात्पुनर्वक्त्रेण चाहरेत् ॥ ८५ ॥
नासाभ्यां रेचयेत्पश्चात् कुर्यादेवं पुनः पुनः ॥
मातंगिनी परा मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥ ८६ ॥

अर्थ--कंठ (गरे) तक जलमें ठाडो होकर पहले नाकसों जलको खेंचकें मुखसों निकार देवे ता पीछें मुखसों जल खेंचके पीछें नाकसों गेर देय नाकके दोनों छेदनमों वहाय देइ, या प्रकार वारंवार खेंचे और वेरवेर गेरे याको नाम मातंगिनी मुद्रा है यह मुद्रा बुढापे और मौतको नाश करै है ॥ ८५ ॥ ८६ ॥

अथ मातंगिनीमुद्राफलम् ।

विरले निर्जने देशे स्थित्वा चैकाग्रमानसः ॥
कुर्यान्मातंगिनीं मुद्रां मातंग इव जायते ॥ ८७ ॥

अर्थ--साधक कहूं निर्जन वन (जहां कोई मनुष्य न हो)

वहां एकाग्र चित्त कर बैठै या मातंगिनीमुद्राकों साधे तौ हाथीकी तरह बलवान् हो जाय है ॥ ८७ ॥

यत्र यत्र स्थितो योगी सुखमत्यन्तमश्नुते ॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन साधयेन्मुद्रिकां पराम् ॥ ८८ ॥

अर्थ—या मुद्राके साधन करवेवारे योगी जहां जहां स्थिर (बैठा) रहेगा वहीं वहीं बहुत सुखका भागी होगा या कारण सब तरहसे जतन करकें या श्रेष्ठ मुद्राकों साधन करनो चाहिये । इति ॥ ८८ ॥

अथ भुजंगिनीमुद्राविधिः ।

वक्त्रं किंचित्सुप्रसार्य्य चानिलं गलया पिबेत् ॥
सा भवेद्भुजगी मुद्रा जरामृत्युविनाशिनी ॥ ८९ ॥

अर्थ—मुखकों किंचित् थोरो फैलायके गरेके द्वारा वायु पीया करै गरेमें पवनकौ धक्का जोरसे लगै । इसको भुजंगिनी मुद्रा कहते हैं यह बुढापो तथा मौतको नाश करै है ॥ ८९ ॥

अथ भुजंगिनीमुद्राफलम् ।

यावच्च उदरे रोगमजीर्णादि विशेषतः ॥
तत्सर्वं नाशयेदाशु यत्र मुद्रा भुजंगिनी ॥ ९० ॥

अर्थ—जितनें उदर (पेट) में रोग हैं तथा अजीर्ण आदि-कोंको विशेष करके यह भुजंगिनी मुद्रा शीघ्र दूर करै ॥ ९० ॥

अथ सर्वमुद्राफलम् ।

इदं तु मुद्रापटलं कथितं चंडकापाले ॥
वल्लभं सर्वसिद्धानां जरामरणनाशनम् ॥ ९१ ॥

अर्थ-घेरंडमुनि बोले कि हे चंडकापालि ! मैंने तेरे आगे यह मुद्रानकौ पटल कह्यौ यह सबरे सिद्ध जनोंको प्रिय (प्यारा) है और बुढापे तथा मौतको नाश करै है । इति ॥ ९१ ॥

शठाय भक्तिहीनाय न देयं यस्य कस्यचित् ॥
गोपनीयं प्रयत्नेन दुर्लभं मरुतामपि ॥ ९२ ॥

अर्थ-जो मूर्ख और भक्तिहीन अर्थात् जो भक्तिवान् न हो उसको ये मुद्रा कभी नहीं देनों चाहिये और जिस तिस-कोभी देनी उचित नहीं है इसको यत्नसों गुप्त राखनी चाहिये ये सब मुद्रा देवतानकोभी दुर्लभ हैं । इति ॥ ९२ ॥

ऋजवे शांतचित्ताय गुरुभक्तिपराय च ॥
कुलीनाय प्रदातव्यं भोगमुक्तिप्रदायकम् ॥ ९३ ॥

अर्थ-ये सब मुद्रा भोग (भोजनादि) मोक्ष दोनोंनको देवेवारी है यासों याकों विचार कर देनी चाहिये जैसे कि कोमल सुभाव हों शांतचित्त (चंचल मन न हो) गुरुके कह-बेमें विश्वास राखता तो होइ और अच्छे कुल (वंश) को होय ऐसेनको देनी चाहिये ॥ ९३ ॥

मुद्राणां पटलं ह्येतत्सर्वव्याधिविनाशनम् ॥
नित्यमभ्यासशीलस्य जठराग्निविवर्द्धनम् ॥ ९४ ॥

अर्थ--यह मुद्रापटल सबरे रोगनको नाश करे है और जो नित्य अभ्यास करते हैं उसकी जठराग्नि (पेटकी अग्नि) बढ जाय है । इति ॥ ९४ ॥

तस्य नो जायते मृत्युर्नास्य जरादिकं तथा ॥
नाग्निजलभयं तस्य वायोरपि कुतो भयम् ॥ ९५ ॥

अर्थ–जो नर मुद्रासाधन करैं हैं उनको न तौ बुढापौ न मौत आदि न आग न पानी न पवन (वायु) कभी भय नहीं पहुँचा सकें हैं । इति ॥ १५ ॥

कासः श्वासः प्लीहकुष्ठं श्लेष्मरोगाश्च विंशतिः ॥
मुद्राणां साधनाच्चैव विनश्यन्ति न संशयः ॥ १६ ॥

अर्थ--मुद्रा साधन करवेसों कास श्वास प्लीह कोढ बीस तरहके कफरोग नाशको प्राप्त होते हैं (अर्थात् सर्व रोग जाते रहते हैं) इति ॥ १६ ॥

बहुना किमिहोक्तेन सारं वच्मि च चंड ते ॥
नास्ति मुद्रासमं किंचित् सिद्धिदं क्षितिमंडलम् १७॥

इति श्रीघेरण्डसंहितायां घेरण्डचंडकापालिसंवादे घटस्थयोगप्रकरणे मुद्राप्रयोगो नाम तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥

अर्थ--घेरंडमहाराज कहते हैं कि हे चंडकापालि ! तोसों बहुत कहनेसे क्या है किंतु सार बात मैं कहता हूं कि जिस भूमंडल (धरतीके चारों तरफ) मुद्रासे परें कोईभी चीज सिद्धि देवेवारी नहीं है । इति ॥ १७ ॥

इति श्रीघेरंडसंहितायां श्रीमधुपुरीयास्थदक्षगोत्रोद्भवचातु-र्वेदीशर्म्म श्री ५ कल्याणचंद्रात्मजभिषग्राधाचंद्रविर-चिते व्रजभाषाभाष्यं नाम टीकायां घटस्थयोगप्रक-रणे मुद्राकथनो नाम तृतीयोपदेशः ॥ ३ ॥

चतुर्थोपदेशः ४ ।

अथ प्रत्याहारप्रकरणम् ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रत्याहारकमुत्तमम् ॥
यस्य विज्ञानमात्रेण कामादिरिपुनाशनम् ॥ १ ॥

अर्थ-घेरंड महाराज कहते हैं कि हे चंडकापालि ! मुद्रा कहे पीछें अब हम तोसों प्रत्याहार उत्तम योग कहत हों याके ज्ञानमात्रसेही कामादि (क्रोध मोह मद आदि) वैरी नाशको प्राप्त होते हैं ॥ १ ॥

अतस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २ ॥

अर्थ-जिस विषयमें मन चंचल होके भ्रमण करै प्रत्याहारके द्वारा उस उस विषयसों मनको लौटाय दे अपने वश लानों चाहिये । इति ॥ २ ॥

पुरस्कारं तिरस्कारं सुश्राव्यं भावमायकम् ॥
मनस्तस्मान्नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ३ ॥

अर्थ-चाहें आदर हो चाहें निरादर हो किसीमें मनको कभी नहीं फसानों याही प्रकार कानको अच्छा लगता शब्द हो चाहे बुरो बोले हो किसीमें मन न लगावै अपनेही वश राखै । इति ॥ ३ ॥

सुगंधो वापि दुर्गंधो घ्राणेषु जायते मनः ॥
तस्मात्प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ४ ॥

अर्थ--चाहैं सुगंध (अच्छी गंध) हो चाहें दुर्गंध (बुरी गंध) हों सूंघवेमें आवे और मन वारंवार चाहें तो मनको वहांसे लौटायकें अपने वशमें कर लेय ॥ ४ ॥

मधुराम्लकतिक्तादिरसान्याति यदा मनः ॥
तस्मात् प्रत्याहरेदेतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ ५ ॥
इति श्रीघेरंडसंहितायां घेरंडचंडकापालिसंवादे
प्रत्याहारप्रयोगो नाम चतुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥

अर्थ–मीठो खट्टो चरपरो रस आदि (सब रस) कसैलो कडुओ लवण हो यदि मन इन छहों रसोंकी ओर दौडे तौ उधरसे फेरकरके मनको आत्मा (अपने) वशमें लावै इसका अभ्यास करै याको नाम प्रत्याहार कहे हैं। इति ॥ ५ ॥

इति श्रीघेरंडसंहितायां श्रीमधुपुरीयास्थदक्षगोत्रोद्भवविद्वद्रशिरोमणिश्रीगुरु १०५ श्री नारायणचंद्रचरणारविंदानुरागिराधाचंदविरचितं व्रजभाषाभाष्यं नाम टीकायां प्रत्याहारप्रयोगो नाम चतुर्थोपदेशः ॥ ४ ॥

पञ्चमोपदेशः ५ ।

अथ प्राणायामप्रयोगः ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्राणायामस्य यद्विधिम् ॥
यस्य साधनमात्रेण देवतुल्यो भवेन्नरः ॥ १ ॥

अर्थ--घेरंडमहाराज चंडकापालीसे कहे हैं कि प्राणायामकी विधि कहे हैं जाके साधन करवेसों नर देवतानके समान होइ जाइ है। इति ॥ १ ॥

आदौ स्थानं तथा कालं मिताहारं तथा परम् ॥
नाडीशुद्धिं च तत्पश्चात्प्राणायामं च साधयेत् ॥२॥

अर्थ–प्राणायाम साधनके पहले स्थान निदान करनो चाहियें तापीछें समय स्थापन करे एक अंदाजसों भोजन कर तापीछे प्राणायामकौ साधे ॥ २ ॥

स्थाननिदानम् ।

दूरदेशे तथारण्ये राजधान्यां जनांतिके ॥
योगारंभं न कुर्वीत कृतो न सिद्धिदो भवेत् ॥ ३ ॥

अर्थ–देश (गाम) नसों दूर तथा वन (शोभायमान) में राजाके राजमें जातके बहुत नरोंके पास इतनी जगह प्राणायामरूप योगको साधन करनेसों सिद्धिकों नहीं देय है ॥ ३ ॥

अविश्वासं दूरदेशे अरण्ये रक्षिवर्जितम् ॥
लोकारण्ये प्रकाशश्च तस्मात् त्रीणि विवर्जयेत्॥४॥

अर्थ–दूर देशमें भरोसो न होयवेसों और वनमें रक्षा नहीं होइ सके तासो (शहर) नगरमें जाहिर होइ है तासों इन तीननकों नहीं करना अर्थात् इनकी नाई है ॥ ४ ॥

सुदेशे धार्मिके राज्ये सुभक्षे निरुपद्रवे ॥
तत्रैकं कुटीरं कृत्वा प्राचिरैः परिवेष्टितम् ॥ ५ ॥
वापीकूपतडागं च प्राचीशादयवर्त्ति च ॥
नात्युच्चं नातिनिम्नं च कुटीरं कीटवर्जितम् ॥ ६ ॥
सम्यग्गोमयलिप्तं च कुटीरं तत्र निर्मितम् ॥
एवं स्थानेषु गुप्तेषु प्राणायामं समभ्यसेत् ॥ ७ ॥

अर्थ–अच्छे देशमें धर्मवान् राजाके राज्यमें अच्छी अच्छी तरहके भोजन होते हौं वहां और जहां कछु उपद्रव न हो

तहां एक कुटी (मकान) बनावे वाके चारों ओर भींत आदिसे घेर देवे और वा भींतादिके भीतर कुआ, बावडी तलाव होना चाहिये वो कुटी न तौ ऊंची होइ न बहुत नीची होय और कोई जानवर वहां न होइ और गोबरसो लिपी रहे ऐसी कुटी निर्माण करे ऐसे जगह काऊकों जाहिर न हों वहां प्राणायाम साधनो चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥ ७ ॥

अथ कालनिर्णयः ।

हेमंते शिशिरे ग्रीष्मे वर्षायां च ऋतौ तथा ॥
योगारंभं न कुर्वीत कृतो योगो हि रोगदः ॥ ८ ॥

अर्थ–हेमंतऋतु शिशिरऋतु ग्रीष्मऋतु और वर्षाऋतु इनमें जो योगको आरंभ कियो जाय तौ रोग पैदा करे है अर्थात् इन ऋतुनमें योगको आरंभ न करनो ॥ ८ ॥

वसंत शरदि प्रोक्तं योगारंभं समाचरेत् ॥
तथा यागी भवेत्सिद्धो रोगान्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्॥९॥

अर्थ--वसंतऋतु और शरद्ऋतुमें योगको आरंभ कर इनमें जो योगारंभ करै तौ योग सिद्ध होकर सबरे रोगनसें जरूर छूटे । इति ॥ ९ ॥

चैत्रादिफाल्गुनान्ते च माघादिफाल्गुनान्तिके ॥
द्वौ द्वौ मासौ ऋतुभोगौ अनुभावश्चतुश्चतुः ॥ १०॥

अर्थ--चैतके महीनेसो लेकें फागुनके अंततक छः ऋतु हैं तथा माहके आदिसों फागुनके अंततक दो दो महीनानमें एक एक ऋतु होइ तथा अनुमानसों दो महीना दस दस दिनकी ऋतु होय हैं ॥ १० ॥

वसंतश्चैत्रवैशाखौ ज्येष्ठाषाढौ च ग्रीष्मकः ॥
वर्षा श्रावणभाद्राभ्यां शरदाश्विनकार्तिकौ ॥ ११ ॥

अर्थ--चैत वैशाख तौ वसंतऋतु है, जेठ आसाढ ग्रीष्म (गरमी) की ऋतुके हैं, सावन भादों वर्षाऋतु है क्वार कार्तिक शरद्ऋतुके हैं, यहां हेमंत शिशिर नहीं कही ॥ ११ ॥

अनुभावं प्रवक्ष्यामि ऋतूनां च यथोदितम् ॥
माघादिमाधवान्तेषु वसंतानुभवश्चतुः ॥ १२ ॥
चैत्रादि चाषाढांतं च निदाघानुभवश्चतुः ॥
आषाढादि चाश्विनांतं प्रावृषानुभवश्चतुः ॥ १३ ॥
भाद्रादिमार्गशीर्षान्तं शरदोनुभवश्चतुः ॥
कार्तिकादिमाघमासान्तं हेमंतानुभवश्चतुः ॥
मार्गादिचतुरो मासान् शिशिरानुभवं विदुः ॥१४॥

अर्थ--माहसों वैशाखतक चार महीना वसंतऋतु अनुभव होय है फिर चैतसों आसाढके अंततक ग्रीष्मऋतु अनुभव होइ है और आसाढसों क्वारके अंततक प्रावृष (वर्षा) अनुभव होती है, भादोंसे अगहनके अंततक शरद् अनुभव होइ है और कार्तिकसों माहके अंततक हेमंतऋतु अनुभव होइ है और अगहनसे चार महीना शिशिऋतु अनुभव होइ है सो ये अनुभव ऋतुनको यथायोग कहत भयो इति ॥ १२ ॥ १३ ॥ १४ ॥

वसंते वापि शरदि योगारंभं समाचरेत् ॥
तदा योगो भवेत्सिद्धो विनायासेन कथ्यते ॥ १५ ॥

अर्थ—वसंत अथवा शरद्में योग आरंभ करै तौ विना परिश्रम योग सिद्ध हो जायगो ये योगीनने कह्या है ॥ १५ ॥

अथ मिताहारः ।

मिताहारं विना यस्तु योगारंभं तु कारयेत् ॥
नानारोगो भवेत्तस्य किंचिद्योगो न सिद्ध्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—जो नर अंदाज न बाँधकर भोजन करै है और योगकौ आरंभ करै है वो बहुत रोगनसों व्याप्त होय है और वाको नेकहू योग (विद्या) सिद्ध नहीं होइ है ॥ १६ ॥

शाल्यन्नं यवपिंडं वा गोधूमपिंडकं तथा ॥
मुद्गं माषचणकादि शुभ्रं च तुषवर्जितम् ॥ १७ ॥

अर्थ—जो कोउ योग कियो चाहें तौ वो शालि (चावल) जौकी रोटी गेहूंकी रोटी मूँग उर्द वा चनाकी दार जो खूब झक तुष (भूसी) रहित भोजन करै ॥ १७ ॥

पटोलं पनसं मानं कंकोलं च शुकाशकम् ॥
द्राढिकां कर्कटीरंभोदुंबरीकंटकंटकम् ॥ १८ ॥

अर्थ—परवल कटहर कंकोल करेल आढकी (अरुई) काँकडी केला गूलर चौराई आदिको शाक भोजनमें काम लावे ॥ १८ ॥

आमरंभां बालरंभां रंभादंडं च मूलकम् ॥
वार्ताकीमूलकं ऋद्धिं योगी भक्षणमाचरेत् ॥ १९ ॥

अर्थ—आम गहर तथा कच्ची गहर केलाके गुच्छाको दंडा केलाकी जड और बैंगन मुरी ऋद्धि (औषध) इन सबके साग योगीनको खाने चाहिये ॥ १९ ॥

बालशाकं कालशाकं तथा पटोलपत्रकम् ॥
पंचशाकं प्रशंसीयाद्वास्तुकं हिलमोचिकाम्॥ २० ॥

अर्थ–कोमल (कच्चौ) साग अपने काल (समय) भयो साग और परवलके पत्ता ये पाँच साग (योगियोंको) प्रशंसाके योग्य हैं और बथुआ तथा हिलमोचिकादि ॥ २० ॥

शुद्धं सुमधुरं स्निग्धं उदरार्द्धविवर्जितम् ॥
भुज्यते सुरसं प्रीत्या मिताहारमिमं विदुः ॥ २१ ॥

अर्थ–स्वच्छ मीठे चीकने आधे पेट अर्थात् भरपेट नहीं ऐसे भोजनको योगी सुंदररसयुत प्रीतिकर भोजन करे याको मित (युक्त) आहार कहे हैं ॥ २१ ॥

अन्नेन पूरयेदर्द्धं तोयेन तु तृतीयकम् ॥
उदरस्य तुरीयांशं संरक्षेद्वायुचारणे ॥ २२ ॥

अर्थ–आधे पेट भोजन करे तीसरे (भाग) जल पीये और चौथो हिस्सा पेटको पवनको फिरवेकों बाकी रहनेदेवे २२

कट्वम्ललवणं तिक्तं भृष्टं च दधि तक्रकम् ॥
शाकोत्कटं तथा मद्यं तालं च पनसं तथा ॥ २३ ॥
कुलत्थं मसुरं पांडुं कूष्मांडं शाकदंडकम् ॥
तुम्बीकोलकपित्थं च कंटबिल्वपलाशकम् ॥ २४ ॥
कदंबं जांबिरं बिम्बं लकुनं लशुनं विषम् ॥
कामरंगं प्रियालं च हिंगुशाल्मलिकेमुकम् ॥
योगारंभे वर्जयेत पथ्यं स्त्रीवह्निसेवनम् ॥ २५ ॥

अर्थ--कडुओ खट्टो नोनको चरपरो भूँजे भये (चनादि)

दही मठा बुरे साग शराब (नसाकी वस्तु) छुहारे कटहर और कुलथी मसूरकी दाल पांडु (पीतकाको साग) पेठो मर्शाके डाठरे घीया वेर कैथ (फल) काँटेवारो वेल पलाश (ढाक) कदंबके फूल जंभीरी लकुच लहसन विष कमरख प्याज हींग सेमर केमुक (गोभी) इनको योगके आरंभमें नहीं सेवै अर्थात् वर्जित हैं और रस्तामें चलनों, पराई नारी और आगि येभी न सेवै ॥ २३ ॥ २४ ॥ २५ ॥

नवनीतं घृतं क्षीरं गुडशर्करादि चैक्षवम् ॥
पंचरंभां नारिकेलं दाडिमं मसिवासरम् ॥
द्राक्षां तु नवनीं धात्रीं रसमम्लं विवर्जितम् ॥ २६ ॥

अर्थ—नवनीत (माखन) घी दूध गुड शक्करादि गांडेकी चीप पाँच तरहके केला अनार सोंफ और मुनक्का नोंनियां आवरे और खट्टे रस वर्जित हैं ॥ २६ ॥

एला जातिलवंगं च पौरुषं जम्बु जाम्बुलम् ॥
हरीतकीं च खर्जूरं योगी भक्षणमाचरेत् ॥ २७ ॥

अर्थ—इलाइची चमेल वा (जावित्री) लोंग बल करवेवारी दवा जामुन और कठजामुन हरडे छुहारे ये वस्तु योगीको भोजनमें लेनी चाहिये ॥ २७ ॥

लघुपाकप्रियं स्निग्धं यथा धातुप्रपोषणम् ॥
मनोभिलषितं योग्यं योगी भोजनमाचरेत् ॥ २८ ॥

अर्थ—जल्दी पकवेवारी तथा मनको प्रिय चिकनी और

धातुनको पालवेवारी जो मनमे अच्छे लगे उनको योगी भोजनमें लेवे ॥ २८ ॥

काठिन्यं दुरितं पूतिमुष्णं पर्युषितं तथा ॥
अतिशीतं चातिचोग्रं भक्ष्यं योगी विवर्जयेत् ॥ २९ ॥

अर्थ—कठिन चीज बूरी पाप पैदा करवेवारी चीज सड्यो बास्यौ तथा बहुत ठंडौ बहुत गरम ऐसे भोजन योगीकों नहीं सेवन करने चाहिये ॥ २९ ॥

प्रातः स्नानोपवासादिकायक्लेशविधिं विना ॥
एकाहारं निराहारं यामान्ते च न कारयेत् ॥ ३० ॥

अर्थ—सबरेकौ न्हान्हों उपवास (भूखों रहनों) अंगकों दुःख देवेवारे काम और विधिरहित और एक समयही खानों तथा नहीं खानो एक प्रहर पीछें भोजन ये न करने ॥ ३० ॥

एवं विधिविधानेन प्राणायामं समाचरेत् ॥
आरंभे प्रथमं कुर्यात् क्षीराज्यं नित्यभोजनम् ॥
मध्याह्ने चैव सायाह्ने भोजनद्वयमाचरेत् ॥ ३१ ॥

अर्थ—यही विधि विधानसों प्राणायाम करनो चाहिये पहले प्राणायाम करे तब दूध घी नित्य भोजनमें पीनो चाहिये और दुपहर तथा संध्याके समय इन दोही समयमें योगी भोजन करै ॥ ३१ ॥

अथ नाडीशुद्धिः ।

कुशासने मृगाजिने व्याघ्राजिने च कम्बले ॥

स्थूलासने समासीनः प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥
नाडीशुद्धिं समासाद्य प्राणायामं समभ्यसेत् ॥३२॥

अर्थ--प्राणायाम साधनसों पहले नाडी शुद्ध करले फिर प्राणायाम साधै पूर्व कुशासनमें वा मृगछालापै वा बाघम्बरपै वा कंबलपै बैठे छोटो होय चाहे मोटो पूर्वकी ओर मुख कर वा उत्तरकी ओर मुख करके बैठे ॥ ३२ ॥

नाडीशुद्धिं कथं कुर्यान्नाडीशुद्धिस्तु कीदृशी ॥
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तद्वदस्व दयानिधे ॥ ३३ ॥

अर्थ--हे दयानिधे ! नाडीशुद्धि कौन भाँति करनी चाहिये और नाडीशुद्धिके कहा लक्षण है ता सबके सुनवेकी मेरी इच्छा है सो आप ताको कहो ॥ ३३ ॥

मलाकुलासु नाडीषु मारुतो नैव गच्छति ॥
प्राणायामः कथं सिद्धिस्तत्त्वज्ञानं कथं भवेत् ॥
तस्मादादौ नाडीशुद्धिं प्राणायामं ततोऽभ्यसेत्॥३४॥

अर्थ--मालाकी तरह गुही गई नाडीनके भीतर पवन घुसके गमन नहीं कर सके है तासों प्राणायाम कैसे सिद्धि होवै और तत्वज्ञानहू नहीं होयसके है तासों पहले नाडीशुद्धि कर फिर प्राणायामको अभ्यास (साधन) करै ॥ ३४ ॥

नाडीशुद्धिर्द्विधा प्रोक्ता समनुर्निर्मनुस्तथा ॥
बीजेन समनुं कुर्यान्निर्मनुं धौतिकर्मणा ॥ ३५ ॥

अर्थ--नाडीशुद्धि दो तरहसो होय है एक तो समनु दूसरे निर्मनु कह्यो है समनु तो वह जो बीजमंत्रसों कीयो जाय और

धौतिकर्म (पहले कह आये) तासों करे सों निर्मनु नाडी शुद्धि कहे हैं ॥ ३५ ॥

धौतिकर्म पुरा प्रोक्तं षट्कर्मसाधने यथा ॥
शृणुष्व ममकुं चंड नाडीशुद्धिं यथा भवेत् ॥ ३६ ॥

अर्थ—हे चंडकापालि ! पहले छः कर्मके साधनमेंही धौतिकर्म कह आये और नाडीशुद्धि जैसे होई सो तू सुन ॥ ३६ ॥

उपविश्यासने योगी पद्मासनं समाचरेत् ॥
गुर्वादिन्यासनं कुर्याद्यथैव गुरुभापितम् ॥
नाडीशुद्धिं प्रकुर्वीत प्राणायामविशुद्धये ॥ ३७ ॥

अर्थ—योगी पद्मासन लगायकरके बैठे और गुरुआदिक न्यास करे तथा गुरुजीने सिखायो, कह्यो तैसें करे तो नाडी शुद्धि होई है प्राणायाम शुद्धिके लिये ॥ ३७ ॥

वायुबीजं ततो ध्यात्वा धूम्रवर्णं सतेजसम् ॥
चंद्रेण पूरयेद्वायुं बीजं षोडशकैः सुधीः ॥ ३८ ॥
चतुःषष्ट्या मात्रया च कुंभकेनैव धारयेत् ॥
द्वात्रिंशन्मात्रया वायुं सूर्यनाड्या च रेचयेत् ॥ ३९ ॥

अर्थ—तब ध्यान करे वायुबीज (यं) को कैसो है वायुबीजको वर्ण तो ताको धूम्र (धूआँ) के समान तेजसहित ये जो मंत्र है ताको बाँए नाकके छेदसो सोलह बार जपतौ (वायुको खेंचे) और चौसठ बार जपतो दोनों नाकके छेद बंद कर वायु (पवन) को ठहरावे ऐसेंही बत्तीस बार जपतौ नाकके दायें छेदसों वायु (पवन) को निकार दे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

नाभिमूलाद्वह्निमुत्थाप्य ध्यायेत्तेजोवनीयुतम् ॥
वह्निबीजषोडशेन सूर्यनाड्या च पूरयेत् ॥ ४० ॥
चतुः षष्ट्या च मात्रया कुंभकेनैव धारयेत् ॥
द्वात्रिंशन्मात्रया वायुं शशिनाड्या च रेचयेत्॥४१॥

अर्थ–टूंडीकी जड अग्नितत्वकी जगह है सो वाको ध्यान कर दीप्त करै धरनीतत्वकों तामें मिलावै फिर अग्निबीज जो (रं) ताकौ सोलै वार जप करतौ भयौ नाकके बांये छेदसों पवनको खेंचे ऐसेही चौसठ वार (रं) जपतो भयो दोनों सुर नाकके छेद मूंद जपतौ भयो डाटै और बत्तीसवार वायुमंत्रके बीजकौं जपतौ भयो नाकके बायं छेदसो निकास देय ॥ ४० ॥ ४१ ॥

नासाग्रे शशिधृग्बिंबं ध्यात्वा ज्योत्स्नासमन्वितम् ॥
ठं बीजं षोडशेनैव इडया पूरयेन्मरुत् ॥ ४२ ॥
चतुःषष्ट्या मात्रया च वं बीजं नैव धारयेत् ॥
अमृतं प्लावितं ध्यात्वा नाडीधौतिं विभावयेत् ॥
लकारेण द्वात्रिंशेन दृढं भाव्यं विरेचयेत् ॥ ४३ ॥

अर्थ--फिर नाकके आगेके भागमें किरणनिके सहित चन्द्रकौ ध्यान करतौ भयौ (ठं) जो बीज है ताकौ सोलै वार जप करतौ भयौ नाकके बायें रंध्र (छेद) सों वायु (पवन) कों हौले हौले खेंचै और चौंसठ वार (मात्रा) जपै (वं) बीजको जपतौ भयौ (दोनों छेदनिसों रोके) और ध्यान करै कि नाकके आगेके भागमें रहवेवारो चंद्रविम्ब तासों मानों

अमृत गिरे है तासो अंगकी सबरी नाडी धुइ रही हैं ऐसें ध्यान कर (लं) बीज ताकों बत्तीस वार जपतौ भयो नाकके दाँये सुर (छेद) सो निकार देय ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

एवंविधां नाडीशुद्धिं कृत्वा नाडीं विशोधयेत् ॥
दृढो भूत्वासनं कृत्वा प्राणायामं समाचरेत् ॥ ४४ ॥

अर्थ--याही नाडीशुद्धिसे नाडीनकों शुद्ध करके मजबूतीसों आसन मारके प्रिय प्राणायामकौ अभ्यास करनों ॥ ४४ ॥

सहितः सूर्यभेदश्च उज्जायी शीतली तथा ॥
भस्त्रिका भ्रामरी मूर्छा केवली चाष्टकुंभिकाः ॥४५॥

अर्थ--आठ तरहकौ कुंभक प्राणायाम है सहित, सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली, भस्त्रिका, भ्रामरी, मूर्च्छा, केवली। इति ४५

सहितो द्विविधिः प्रोक्तः प्राणायामं समाचरेत् ॥
सगर्भो वीर्य्यमुच्चार्य निगर्भो बीजवर्जितः ॥ ४६ ॥

अर्थ—कुंभकप्राणायाम सहित नामक दो तरहकौ है एक तौ सगर्भ और दूसरो निगर्भ जा कुंभकमें बीजमंत्र बोल करकें साधन कर्यो जाय वो तो सगर्भ कह्यो जाय है और जामें बीज मंत्र न बोल्यो जाय वह निगर्भ कह्यो जाय है । इति ॥ ४६ ॥

प्राणायामं सगर्भं च प्रथमं कथयामि ते ॥
सुखासने चोपविश्य प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः ॥
ध्यायेद्विधिं रजोगुण्यं रक्तवर्णमवर्णकम् ॥ ४७ ॥

अर्थ—सगर्भ जो प्राणायाम है ताकों पहले कहों हों सुखासनपै पूरवकी ओर मुख करके या उत्तरकी ओर मुख करके

बैठे फिर ब्रह्माको ऐसे ध्यान करे मानों रजोगुणसहित लाल है रंग जाको और (अ) वर्ण स्वर रूप जाकौ । इति ॥ ४७ ॥

इडया पूरयेद्वायुं मात्रया षोडशैः सुधीः ॥
पूरकान्ते कुंभकाद्ये कर्तव्यस्तूड्डियानकः ॥ ४८ ॥

अर्थ—नाकके बाये रंध्र (छेद) सों सोलह वेर जपतो भयो (अं) या मंत्रको वायुकों खेंचै और वाही समय कुंभक (रोकवे) के पहलें पूरक (वायु खेंचवे) के पीछें उड्डीयान करनों चाहिये ॥ ४८ ॥

सत्त्वमयं हरिं ध्यात्वा उकारं कृष्णवर्णकम् ॥
चतुःषष्ट्या च मात्रया कुंभकेनैव धारयेत् ॥ ४९ ॥

अर्थ—फिर सत्व (गुण) मय हरि (विष्णु) को ध्यान करे उकाररूप कारो है रंग जाको चौसठ वेर जप (मनसे) करतो भयो नाकके छेदनमों वायु ठेरावे ॥ ४९ ॥

तमोमयं शिवं ध्यात्वा मकारं शुक्लवर्णकम् ॥
द्वाविंशन्मात्रया चैव रेचयेद्विधिना पुनः ॥ ५० ॥

अर्थ—फिर तमो (गुण) मय शिव (महादेव) तिनको ध्यान करनों और मकार जो सुपेद रंग ताको बत्तीस वेर जपकें फिर विधिसो तथा (द्विज) निकारे (नाकको) दाँये छेदसों ॥ ५० ॥

पुनः पिंगलयापूर्य कुंभकेनैव धारयेत् ॥
इडया रेचयेत्पश्चात्तद्वीजेन क्रमेण तु ॥ ५१ ॥

अर्थ—पीछें नाकके दाँये छेदसों वायुको खैंचे घडावत

दोनों छेदनसों रोकै और नाकके बांये छेदसों पवनकों निकार रे पहले जो बीज कह आये हैं तिनके क्रमसों ॥ ५१ ॥

अनुलोमविलोमेन वारं वारं च साधयेत् ॥
पूरकांते कुंभकांतं धृतं नासापुटद्वयम् ॥
कनिष्ठानामिकांगुष्ठैस्तर्जनीमध्यमां विना ॥ ५२ ॥

अर्थ–फिर वेर वेर बायें छेद (नाकके) सों खैंचे और नाकके दांये छेदसों निकारे फिर दांये छेदसां पवन खैंचे और बांये नाकके छेदसों निकारे (और दोनों छेदसों रोके) खेचवेके अंततक और रोकवेके अंततक दोनों नाकके छेदनकों छोटी अंगुरिया तथा छोटीके पासकी और अँगूठा और अंगूठाके पासकी अंगुरिया इन चारोंसो नाककों पकरे ॥ ५२ ॥

प्राणायामं च निर्गर्भं विना बीजेन जायते ॥
एकादिशतपर्यंतं पूरकुंभकरेचनम् ॥ ५३ ॥

अर्थ–निगर्भ जो प्राणायाम दूसरी विधि कह आये, वो विना बीज (मंत्र) के कीयो जाय है सो पूरक कुंभक रेचक ये तीन प्राणायाम मिलके एक सौ बारह मात्रातक हैं ॥ ५३ ॥

उत्तमा विंशतिर्मात्रा मात्रा षोडशमध्यमा ॥
अधमा द्वादशी मात्रा प्राणायामास्त्रिधा स्मृताः ५४॥

अर्थ–उत्तम तौ बीस मात्रावारौ है और मध्यम सोलह मात्रावारौ है और अधम बारह मात्रावारौ ऐसें प्राणायाम तीन तरहकौ है ॥ ५४ ॥

अधमाज्जायते घर्मं मेरुकंपं च मध्यमात् ॥
उत्तमाच्च भूमित्यागस्त्रिविधं सिद्धिलक्षणम् ॥ ५५ ॥

अर्थ--अधम प्राणायामसों घर्म (पसीना) होइ है और मध्यम प्राणायामसों पीठ काँपवे लगजाय है और उत्तम प्राणायामसों देह धरतीसो अलग अर्थात् (आकाश) में पोंचजाय ऐसें तीन तरहँ प्राणायामकी सिद्धिके लक्षण हैं ॥ ५५ ॥

प्राणायामात् खेचरत्वं प्राणायामाद्रोगनाशनम् ॥
प्राणायामाद्बोधयेच्छक्तिं प्राणायामान्मनोन्मनी ॥
आनंदो जायते चित्ते प्राणायामी सुखी भवेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ--प्राणायाम साधनसों आकाशमें उडवेकी (ताकत) प्राप्ति होइ है और प्राणायामसों प्राण (देह) के तथा (प्राण-पवन) के रोग नाश होइ हैं और प्राणायामसों बोध (बुद्धि) रूप शक्ति (ताकत) होइ है और प्राणायामसों ज्ञान लाभ होइ है और प्राणायामसों मनकों आनंद होइ है और प्राणायाम करवेवारो सुखी होइ है ॥ ५६ ॥

अथ सूर्यभेदककुंभकविधिः ।

कथितं सहितं कुंभं सूर्यभेदनकं शृणु ॥
पूरयेत्सूर्यनाड्या च यथाशक्ति बहिर्मरुत् ॥ ५७ ॥
धारयेद्बहुयत्नेन कुंभकेन जलंधरैः ॥
यावत्स्वेदो नखकेशाभ्यां तावत्कुर्वंतु कुंभकम् ॥ ५८

अर्थ--पहलें सहित कुंभक तो कह आये अब सूर्यभेद (प्राणायाम) को सुन पहले नाकके दायें छेदसो (वायु)

पवनको खेचै जितनी ताकत हो तितनी और जालंधर (मुद्राको) जतनसों धारण करै और नाकके दोनों छेदसों पवनको रोकै रहै जबतक नख और बारसों पसीना न आवै तबतक धारण करै ॥ ७७ ॥ ७८ ॥

प्राणोपानः समानश्चोदानव्यानौ तथैव च ॥
नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनंजयः ॥ ७९ ॥

अर्थ–प्राण (हृदयमें रहवेवारो पवन) अपान, समान, उदान, व्यान ये पांच तरहके पवन अंगमें रहै हैं और नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त, धनंजय ये पांच तरहके पवन अंगसों बाहर रहें हैं ॥ ७९ ॥

हृदि प्राणो वहेन्नित्यमपानो गुदमंडले ॥
समानो नाभिदेशे तु उदानः कंठमध्यगः ॥ ८० ॥
व्यानो व्याप्य शरीरे तु प्रधानाः पंच वायवः ॥
प्राणाद्याः पंच विख्याता नागाद्याः पंच वायवः॥ ८१

अर्थ–प्राणपवन हृदयमें रहे है नित्य और अपान (वायु) गुदमंडलमें रहे है और समानपवन टूंडीके देशमें रहे है और उदान (पवन) कंठके भीतर रहे है और व्यान (पवन) सबरे शरीरमें रहे है ये पांच वायु (पवन) प्रधान है और नाग आदि वायु पांचो अप्रधान हैं ॥ ८० ॥ ८१ ॥

तेषामपि च पंचानां स्थानान्यपि वदाम्यहम् ॥
उद्गारे नाग आख्यातः कूर्मस्तून्मीलने स्मृतः ॥ ८२ ॥

कृकलः क्षुत्कृते ज्ञेयो देवदत्तो विजृंभणे ॥
न जहाति मृते क्कापि सर्वव्यापी धनंजयः ॥ ६३ ॥

अर्थ-वे पांचों तरहके पवन जा जा जगह हैं वे हम कहें हैं नागनामको पवन डकार लेवेमें आवे है और कूर्मनामको पवन आंखकी पलक मीचवेखोलवेमें है और कृकर नामको पवन छींकमें है और हिचकीमें देवदत्तनामको पवन है सो जंभाइमें है और धनंजयनामको पवन मरे पीछे तक अंगमें रहे है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

नागो गृह्णाति चैतन्यं कूर्मश्चैव निमेषणम् ॥
क्षुधा तृट् कृकरश्चैव जृंभणं चतुर्थेन तु ॥
भवेद्धनंजयाच्छब्दं क्षणमात्रं न निःसरेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ-नाग (नामको पवन) चैतन्यता (हुसयारी) को ग्रहण करे है और कूर्म (नामको पवन) आंखोंकी पलकोंमें रहता है और कृकर (नामको पवन) भूँख प्यासी और देवदत्त नामको (पवन) उवासीको ग्रहण करे है और धनंजय (नामको पवन) अंगसों एक क्षण बाहर नहीं होइ है और बोलवे (वगैरे) का काम होता है ॥ ६४ ॥

सर्वे ते सूर्यसंभिन्ना नाभिमूलात्समुद्धरेत् ॥
इडया रेचयेत्पश्चाद्धैर्येणाखंडवेगतः ॥ ६५ ॥
पुनः सूर्येण चाकृष्य कुंभयित्वा यथाविधि ॥
रेचयित्वा साधयेत्तु क्रमेण च पुनः पुनः ॥ ६६ ॥

अर्थ-सबरे सूर्यभेदक (प्राणायाम) टूंडीकी जडसों उठा-

यकर पीछे धीरजके संग बडे वेगसों नाकके बाँये छेदसों पवन निकार दे फिर नाकके दाँये छेदसों पवनको खेंचे और दोनों नाकके छेदसों रोके विधिसहित ऐसेही खेंचे और रोके बेर-बेर क्रमसों ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

अथ सूर्यभेदककुंभकफलम्।

कुंभकः सूर्यभेदस्तु जरामृत्युविनाशकः ॥
बोधयेत्कुंडलीं शक्तिं देहानलविवर्द्धनः ॥
इति ते कथितं चंडं सूर्यभेदनमुत्तमम् ॥ ६७ ॥

अर्थ—सूर्यभेदक कुंभक बुढापो तथा मौतको नाश करै है और कुंडलीशक्तिको तेज करै है और अंगस्थ अग्निको बढावै है हे चंडकापालि ! यह सूर्यभेदक उत्तम प्राणायाम संपूर्ण भयो ॥ ६७ ॥

अथ उज्जायीकुंभकविधिः।

नासाभ्यां वायुमाकृष्य वायुं वक्त्रेण धारयेत् ॥
हृद्गलाभ्यां समाकृष्य मुखमध्ये च धारयेत् ॥ ६८ ॥

अर्थ—नाकसों पवनको खेंचकर मुखमें धरके रोके और हृदय और कंठके पवनको खेंचकर मुखके (वायुके) बीच (मिलायके) धारण करै ॥ ६८ ॥

मुखं प्रक्षाल्य संवंद्य कुर्याज्जालंधरं ततः ॥
आशक्ति कुंभकं कृत्वा धारयेदविरोधतः ॥ ६९ ॥

अर्थ—तब मुख धोयके वंदनाकरके जालंधरमुद्रा तबतक करै और कुंभकप्राणायाम (वायुको रोकना) तबतक करै

जबतक बल रहे तबतक धारण करै रहै और निकार देवे॥ ६९

अथ उज्जायीकुंभकफलम् ।

उज्जायीकुंभकं कृत्वा सर्वकार्याणि साधयेत् ॥
न भवेत्कफरोगं च क्रूरवायुरजीर्णकम् ॥ ७० ॥
आमवातं क्षयं कासं ज्वरप्लीहा न विद्यते ॥
जरामृत्युविनाशाय चोज्जायीं साधयेन्नरः ॥ ७१ ॥

अर्थ--उज्जायीकुंभक (प्राणायामको रोकनो) सबरे कामनको साधै है और कफके रोग नहीं होइ हैं वादीको कोप तथा तापतिल्ली नहीं रहे है और बुढापो तथा मौतको नाश करै है जो मनुष्य उज्जायीकुंभक (प्राणायाम) को साधै है ताके ॥ ७० ॥ ७१ ॥

अथ शीतलीकुंभकविधिः ।

जिह्वया वायुमाकृष्य उदरे पूरयेच्छनैः ॥
क्षणं च कुंभकं कृत्वा नासाभ्यां रेचयेत्पुनः ॥७२॥

अर्थ--जीभसों पवनको खेंचकर पेटमें हौले हौले भरले फिर क्षण (पलक) भर रोकके पीछे नाकसो निकार दे यह शीतलीकुंभक प्राणायामकी विधि है ॥ ७२ ॥

अथ शीतलीकुंभकफलम् ।

सर्वदा साधयेद्योगी शीतलीकुंभकं शुभम् ॥
अजीर्णकफपित्तं च न च तस्य प्रजायते ॥ ७३ ॥

अर्थ--सदाही साधनो चाहिये योगीजननको शुभ जो

शीतलीकुंभक (प्राणायाम) सों कफ पित्त अजीर्णके रोग कभी नहीं होइ हैं ॥ ७३ ॥

अथ भस्त्रिकाकुंभकविधिः ।

भस्त्रैव लोहकाराणां यथा क्रमेण संभ्रमेत् ॥
तथा वायुं च नासाभ्यामुभाभ्यां चालयेच्छनैः ७४॥

अर्थ–जैसे लुहारकी धोंकनी वेर वेर वायु (पवन) को खेंचे (छोडे) है वैसेही पवनको नाकके दोनों छेदनसों खेंचके पेटमें हौले हौले भरे ॥ ७४ ॥

एवं विंशतिवारं च कृत्वा कुर्याच्च कुंभकम् ॥
तदंते चालयेद्वायुं पूर्वोक्तं च यथाविधि ॥ ७५ ॥
त्रिवारं साधयेदेनं भस्त्रिकाकुंभकं सुधीः ॥
न च रोगं न च क्लेशमारोग्यं च दिने दिने ॥ ७६ ॥

अर्थ--ऐसे वीस वेर खेंच करके कुंभक (प्राणायाम) रोकनों पवनकों ता पीछे पहले जैसी विधिसों कह आये वैसेही वायुको निकार दे ऐसे बुद्धिमान् तीन वेर याको साधे भस्त्रिका कुंभक (नामके प्राणायामको) ताके न रोग होय न क्लेश होय और नित्यप्रति आरोग्य रह्यो आवै अर्थात मरे नहीं॥ ७५ ॥ ७६ ॥

अथ भ्रामरीकुंभकविधिः ।

अर्द्धरात्रिगते योगी जंतूनां शब्दवर्जिते ॥
कर्णौ पिधाय हस्ताभ्यां कुर्यात्पूरककुंभकम् ॥ ७७॥

अर्थ--जब आधी रात वीत जाय तब योगी (जन)

एकान्त जगह जहां जीवजंतुकोभी बोल न सुन पडतो होय तहां बैठ दोनों हाथनसो कान मूंदकर पूरक (खेंचनो) कुंभक रोकनो प्राणायामको करै ॥ ७७ ॥

शृणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमंतर्गतं शुभम् ॥
प्रथमं झिंजीनादं च वंशीनादं ततः परम् ॥ ७८ ॥
मेघझर्झरभ्रमरीघंटाकांस्यं ततः परम् ॥
तुरीभेरीमृदंगादिनिनादानकदुंदुभिः ॥ ७९ ॥

अर्थ- भीतरका जो नाद (सुर, आवाज) है सुंदर उसको दांये कानसों सुने वह पहलें झींगुरकोसो नाद (सुर) मालूम होइगो फिर वंसीकोसो शब्द होइगो फिर तासों परें बादरकी गर्जनासी होइगी फिर झाँझकीसी आवाज आवेगी फिर भौंरीकोसो घोष होइगो और वासों परे घंटा तथा काँसेके पात्रकेसो घोष होइगो फिर तुरईकोसो शब्द तथा भेरी मृदंग और नगाडोंकोसो घोष सुन परेगो ॥ ७८ ॥ ७९ ॥

एवं नानाविधं नादं जायते नित्यमभ्यसात् ॥
अनाहतस्य शब्दस्य तस्य शब्दस्य यो ध्वनिः ८० ॥
ध्वनेरंतर्गतं ज्योतिर्ज्योतेरंतर्गतं मनः ॥
तन्मनो विलयं याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
एवं च भ्रामरी सिद्धिः समाधिसिद्धिमाप्नुयात् ॥ ८१ ॥

अर्थ—ऐसे नानातरहके राग (सुर) रोजके अभ्याससों सुनवेमें आवे हैं और वह शब्द अपने आपही होता है वा शब्दकी अद्भुत ध्वनि हैं और वाही ध्वनिसों ज्योति पैदा है

और ज्योतिके अंतर्गत मन है और तब मन वामें मिल जाय है वही परम (श्रेष्ठ) भगवान् विष्णुको परम पद है ऐसी तरह भ्रामरी (कुंभक) सों समाधिसिद्धि हो जाय है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

जपादष्टगुणं ध्यानं ध्यानादष्टगुणं तपः ॥
तपसोऽष्टगुणं गानं गानात्परतरं नहि ॥ ८२ ॥

अर्थ-जपसो आठगुनो (मन) ध्यानमें (लगेहै) और ध्यानसो आठगुणो (मन) तपमें और तपमों आठगुणो (मन) गायवेमं गायवेसों परें और कोईभी नहीं है ॥ ८२ ॥

अथ मूर्च्छाकुंभकविधिः ।

सुखेन कुंभकं कृत्वा मनश्च भ्रुवोरंतरम् ॥
संत्यज्य विषयान्सर्वान्मनोमूर्च्छासुखप्रदम् ॥
आत्मनि मनसो योगादानंदो जायते ध्रुवम् ॥ ८३ ॥

अर्थ-सुखसों कुंभक (प्राणायाम) करकें और मनकों भौंहनिके बीचमें (दृष्टि) द्वारा लगाय देवे और सबरे विषयनकों छोडकें मनकों सुखके करवेवारो मूर्च्छाकी तरह कर देवे और मनके योगसों (परमात्मा) आत्मामें (लय होयकें) जरूर आनंद होय है ॥ ८३ ॥

अथ केवलीकुंभकविधिः ।

हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत्पुनः ॥
षट्शतानि दिवा रात्रौ सहस्राण्येकविंशतिः ॥
अजपां नाम गायत्रीं जीवो जपति सर्वदा ॥ ८४ ॥

अर्थ-श्वास पवन जब भीतरसों बाहर आवे है तब (हं)

यह वर्ण बोल्यो जाय है और जब श्वास भीतरको जाय है तब (सः) वर्ण बोल्यौ जाय है ये दोनों वर्णन समूह इक्कीस हजार छह सौ दिन रातमें बोले (श्वास लिये) जाय हैं । इन दोनों वर्णोंका निदान तंत्रकारने ऐसें कियो है कि (हं) शिव (आनंद) है और (सः) शक्ति है तासों याकों अजपा नाम गायत्री कहें हैं और सबही जीव जपें हैं ॥ ८४ ॥

मूलाधारे यथा हंसस्तथा हि हृदि पंकजे ॥
तथा नासापुटे द्वंद्वे त्रिविधं संगमागमम् ॥ ८५ ॥

अर्थ–लिंग और गुदाके बीचमें हृदयकमल तथा नाकके दोनों छेदमें और इडापिंगला नाडीनमें इन तीनों जगहमें (अजपाकौ अपने आप) निकसनो धसनो होयो करै है ॥ ८५ ॥

षण्णवत्यंगुलीमानं शरीरं कर्मरूपकम् ।
देहाद्बहिर्गतो वायुः स्वभावो द्वादशांगुलिः ॥ ८६ ॥
गायने षोडशांगुल्या भोजने विंशतिस्तथा ॥
चतुर्विंशांगुलिः प्रस्थो निद्रायां त्रिंशदंगुलिः ॥
मैथुने षट्त्रिंशदुक्तं व्यायामे च ततोऽधिकम् ॥८७॥

अर्थ–वायु छह अंगुलिके समान शरीरके कर्मकौ रूप है और देहसों बाहिर निकरे पीछें पवनको स्वभाव बारह अंगुलिकौ होइहै और गायवेमें सोलह अंगुलि और भोजनमें वीस अंगुलि और मार्ग चलवेमें चौवीस अंगुलि और नींदमें तीस अंगुलि और रति (विषय) में छत्तीस कहे और परिश्रम सो अधिक होइ है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

स्वभावेऽस्य गते न्यूनं परमायुः प्रवर्द्धते ॥
आयुःक्षयोऽधिके प्रोक्तो मारुते चांतराद्गते ॥ ८८ ॥

अर्थ–स्वभाव (अपने भाव) सों जो इनकी गति (चालनो) थोरो होइ तौ परमायु (अवस्था उमर) बढै और अंतरगत पवन (श्वास) बहुत चलें तौ उमर घट जाय ऐसा योगिजन कहे हैं ॥ ८८ ॥

तस्मात्प्राणे स्थिते देहे मरणं नैव जायते ॥
वायुना घटसंबंधे भवेत्केवलकुंभकम् ॥ ८९ ॥

अर्थ–जबतक प्राणवायु (हृदयमें रहवेवारो पवन) अंगमें रहे है तबतक मौत नहीं आवै है सो या अंगकी रक्षाके सम्बन्धमें वा प्राणपवनके संग केवल कुंभक (प्राणायाम) है॥८९

यावज्जीवां जपेन्मंत्रमजपासंख्यकेवलम् ॥
अद्यावधि धृतं संख्याविभ्रमं केवलीकृते ॥ ९० ॥
अत एव हि कर्तव्यः केवली कुंभको नरैः ॥
केवली चाजपासंख्या द्विगुणा च मनोन्मनी ॥९१॥

अर्थ–मनुष्य जबतक जीवे तबतक केवल अजपाकों संख्यावत जपतो है जैसी पहलें संख्या कर आये तासों विभ्रम और केवली करबे (सो सिद्धि होइ है) तासों नरोंकों केवलीही (प्राणायाम) करनों चाहिये और अजपाकों दूनी कर केवली करे तौ मन बडो प्रसन्न हो जाय है ॥ ९० ॥ ९१ ॥

नासाभ्यां वायुमाकृष्य केवलं कुंभकं चरेत् ॥
एकादिकचतुःषष्ठं धारयेत्प्रथमे दिने ॥ ९२ ॥

अर्थ–नाक (के दोनों छेदन) सों पवन खेंचके एक खाली (रोकनों) कुंभक करै और पहले दिन जबतक (अजपा) चौसठ वेर पूरी न होई तबतक धारण करतो रहे ॥ ९२ ॥

केवलीमष्टधा कुर्याद्यामे यामे दिने दिने ॥
अथवा पंचधा कुर्याद्यथा तत्कथयामि ते ॥ ९३ ॥

अर्थ–पहलें कह्यो भयो केवलीकुंभकको रोज दिनमें आठवेर करनों अथवा आठ प्रहरमें आठ वार करनों तथा प्रतिदिन पांचवार (साधन करनों चाहिये) जैसो हम कहते हैं तैसें ॥ ९३ ॥

प्रातर्मध्याह्नसायाह्ने मध्ये रात्रिचतुर्थके ॥
त्रिसंध्यमथवा कुर्यात्स समाने दिने दिने ॥ ९४ ॥

अर्थ–सबेरे दुपहर संध्या और आधीरातके चौथे प्रहरमें अथवा तीनों संध्यानमें ठीक २ समयपै करै रोजकी रोज (केवली प्राणायाम जो पहलें कह आये हैं सो) ॥ ९४ ॥

पंचवारं दिने वृद्धिर्वारैकं च दिने तथा ॥
अजपापरिमाणं च यावत्सिद्धिः प्रजायते ॥ ९५ ॥

अर्थ–जबतक यह केवली कुंभक (प्राणायाम) सिद्धि न होइ तबतक रोज अजपाको प्रमाण एकवेर तथा पांचवार तथा (क्रमसों) बढातो जाय ॥ ९५ ॥

प्राणायामं केवलीं च तदा वदति योगवित् ॥
कुंभके केवलीसिद्धौ किं न सिद्ध्यति भूतले ॥९६॥

इति श्रीघेरंडसंहितायां घेरंडचंडकापालिसंवादे प्राणायामप्रयोगो नाम पंचमोपदेशः ॥ ५ ॥

अर्थ—जब मनुष्य केवलीकुंभक साधन कर लेय है तब योगविद्याकौ जानवेवारौ हो जाय है केवली कुंभक सिद्धि होयवेसों धरतीमें ऐसी कोऊ चीज नहीं है जो सिद्ध नहीं होय ॥ ९६ ॥

इति श्रीघेरंडसंहितायां श्रीमथुरास्थदक्षगोत्रोद्भवचातुर्वेदि-श्री ५ कल्याणचंद्रात्मजराधाचंद्रशर्मविरचितायां व्रजभा-षाभाष्यनामकव्रजभाषाटीकायां प्राणायामप्रयोगो नाम पंचमोपदेशः ॥ ५ ॥

षष्ठोपदेशः ६.।

अथ ध्यानयोगः ।

स्थूलं ज्योतिस्तथा सूक्ष्मं ध्यानस्य त्रिविधं विदुः ॥
स्थूलं मूर्तिमयं प्रोक्तं ज्योतिस्तेजोमयं तथा ॥
सूक्ष्मं बिंदुमयं ब्रह्म कुंडली परदेवता ॥ १ ॥

अर्थ—अब ध्यानयोगकों कहते हैं । तामें ध्यान तीन तरहकौ कह्यो है । स्थूल ध्यान (बडो ध्यान), ज्योति-ध्यान (तेजकौ ध्यान) और सूक्ष्मध्यान (छोटौ ध्यान) उदा-हरण—बडौ ध्यान तौ मूर्तिमय होइ है तथा ज्योतिर्ध्यान तेज-मय होइ है छोटौ ध्यान सबरहित ब्रह्ममय होत है तथा कुंड-लीनो परे जो देवतानौ होय है ॥ १ ॥

अथ स्थूलध्यानविधिः ।

स्वकीयहृदये ध्यायेत् सुधासागरमुत्तमम् ॥
तन्मध्ये रत्नदीपं तु सुरत्नवालुकामयम् ॥ २ ॥

अर्थ–उपरोक्त समाधिको साधके हृदयमें ऐसो ध्यान करै मानों अमृतको समुद्र है ताके बीचमें रत्न (हीरादि) मय नामक रत्नद्वीप है और तामें रत्नमय वालुकाकी उन्नति हो रही है ॥ २ ॥

चतुर्दिक्षु निंबतरुर्बहुपुष्पसमन्वितः ॥
निंबोपवनसंकूलं वेष्टितं परिखा इव ॥ ३ ॥

अर्थ–तामें चारों ओर नीमके पेड बहुत फूलोंके सहित (शोभायमान) हो रहे हैं और वा नीमके फूलनिकी शोभा मानों किलेकी खाई है ऐसी लखै ॥ ३ ॥

मालतीमल्लिकाजातीकेशरैश्चंपकैस्तथा ॥
पारिजातैः स्थलैः पद्मैर्गंधामोदितदिङ्मुखैः ॥ ४ ॥

अर्थ–और मालती और मल्लिका तथा चमेली केशर तथा चंपा और बकायन स्थलकमल इनकी सुगंधसों मानों दशों दिशा महक रही हैं ॥ ४ ॥

तन्मध्ये संस्मरेद्योगी कल्पवृक्षं मनोहरम् ॥
चतुःशाखाचतुर्वेदं नित्यं पुष्पफलान्वितम् ॥ ५ ॥

अर्थ–ताके बीचमें ऐसो ध्यान (स्मरण) योगी करे कि एक कल्पवृक्ष है कैसो है (कल्पतरु) कि मनको हरवेवारो तामें है चार शाखा (डारी) चारों वेद तामें नित्यकर्मादि है फलफूलसहित ॥ ५ ॥

भ्रमराः कोकिलास्तत्र गुंजंति निगदंति च ॥
ध्यायेत्तत्र स्थिरो भूत्वा महामाणिकमंडपम् ॥ ६ ॥

अर्थ–तिनमें भ्रमर (कर्म) कोकिला (सज्जन साधु) पढ

रहेहैं और उपदेश कर रहे हैं फिर वा (पेड) कल्पतरुके (नीचे) स्थिर रहके ऐसो ध्यान करै मानों माणिक्यको मंडप है ॥ ६॥

तन्मध्ये तु स्मरेद्योगी पर्यंकं सुमनोहरम् ॥
तत्रेष्टदेवतां ध्यायेद्यद्ध्यानं गुरुभाषितम् ॥ ७ ॥

अर्थ—तामें ऐसो स्मरण करै कि मानों एक पलंग (रत्नमय) मनकों हरवेवारो तामें अपने इष्टदेवको ध्यान करे जो गुरुजीनें बतायौ होई ॥ ७ ॥

यस्य देवस्य यद्रूपं यथा भूषणवाहनम् ॥
तद्रूपं ध्यायते नित्यं स्थूलध्यानमिदं विदुः ॥ ८ ॥

अर्थ—और वा देवके वाके रूपके समान गहने तथा असवारी जाननी वैसोही वाके रूपको ध्यान करै याकों स्थूलध्यान कहे हैं ॥ ८ ॥

अथ प्रकारांतरस्थूलध्यानविधिः।

सहस्रारे महापद्मे कर्णिकायां विचिंतयेत् ॥
विलग्नसहितं पद्मं द्वादशैर्दलसंयुतम् ॥ ९ ॥

अर्थ--ब्रह्मरंध्रमें सहस्रार नामक एक सहस्र (हजार) दलको कमल है तहां योगी याही रूपसों ध्यान करै किंवा महाकमलकी पत्तीनके बीचमें जो कर्णिका है वाहूमें बारह पत्ताको कमल है ॥ ९ ॥

शुक्लवर्णं महातेजो द्वादशैर्बीजभूषितम् ॥
हसक्षमलवरयूंहसखफ्रें यथाक्रमम् ॥ १० ॥

अर्थ--वो (बारह दल) कमलको सुपेद रंग है और तेजसों

चमकै है और वाके बारह पत्तानमें क्रमसों यह बीज (मंत्र) दीखें हैं ह, स, क्ष, म, ल, व, र, युं, ह, स, ख, फ्रें, यह बीजमंत्र है ॥ १० ॥

तन्मध्ये कर्णिकायां तु अकथादि रेखात्रयम् ॥
हलक्षकोणसंयुक्तं प्रणवं तत्र वर्त्तते ॥ ११ ॥

अर्थ–तामें जो कर्णिका है ताके मध्यमें अ, क, थ ये तीन अक्षर तीन रेखा और ह, ल, क्ष, ये तीन अक्षरनसों मिले भये तथा बीचमें ॐकार विराजै है ॥ ११ ॥

नादबिंदुमयं पीठं ध्यायेत्तत्र मनोहरम् ॥
तत्रोपरि हंसयुग्मं पादुका तत्र वर्तते ॥ १२ ॥

अर्थ–योगी ऐसो ध्यान करै मानों वहां नादबिंदुमय एक मनोहर सिंहासन बिछो है तापै एक जोडा हंसको बैठ्यौ है और खडामहू वर्ते हैं ॥ १२ ॥

ध्यायेत्तत्र गुरुं देवं द्विभुजं च त्रिलोचनम् ॥
श्वेतांबरधरं देवं शुक्लगंधानुलेपनम् ॥ १३ ॥

अर्थ–और तहां ऐसे जो गुरुदेवको ऐसौ ध्यान करै मानो दो तौ तिनकी भुजा हैं और तीन हैं आंख जिनकी सुपेद धारण किये हैं कपडा जिनने सुपेदही है रंग जिनको और शुक्ल-गंध कियो है लेपन ॥ १३ ॥

शुक्लपुष्पमयं माल्यं रक्तशक्तिसमन्वितम् ॥
एवंविधं गुरुं ध्यानात् स्थूलध्यानं प्रसाध्यति ॥ १४॥

अर्थ–और फूलनकी माला पहरे हैं लाल रंगकी शक्ति

(तिय) के संग राजे हैं और ऐसे गुरुकौ ध्यान करवेसों स्थूल ध्यान साधित होता है ॥ १४ ॥

अथ ज्योतिर्ध्यानविधिः ।

कथितं स्थूलध्यानं तु तेजोध्यानं शृणुष्व मे ॥
यद्ध्यानेन योगसिद्धिरात्मप्रत्यक्षमेव च ॥ १५ ॥

अर्थ–स्थूल ध्यान तौ कह्यौ अब तेजोध्यान सुन जाके ध्यानसों योगकी सिद्धि आत्मपरमात्मा प्रगट (जाहिर) हो जाय है ॥ १५ ॥

मूलाधारे कुंडलिनी भुजंगाकाररूपिणी ॥
जीवात्मा तिष्ठति तत्र प्रदीपकलिकाकृतिः ॥
ध्यायेत्तेजोमयं ब्रह्म तेजोध्यानं परात्परम् ॥ १६ ॥

अर्थ–मूलाधार (गुदा) और लिंगमूलके बीचकी जगहमें कुंडलिनी (शक्ति) सापके रूप तथा आकारसी है वहांही दीयाकी जोतकी तरह जीवात्मा (परमेश्वर) विराजमान है तामें ज्योतिर्मय (तेजसहित) जो परमेश्वर है ताके तेजकौ ध्यान परात्पर है ॥ १६ ॥

अथ प्रकारांतरेण ज्योतिर्ध्यानविधिः ।

भ्रुवोर्मध्ये मनोर्ध्वे च यत्तेजः प्रणवात्मकम् ॥
ध्यायेज्ज्वालावलीयुक्तं तेजोध्यानं तदेव हि ॥ १७ ॥

अर्थ–दोनों भौंहनके बीचमें तथा मनके ऊपर जो ॐकार मय तेजावलीयुक्त जो शिखा है वही तेजोध्यान है अर्थात् ज्योतिर्ध्यान कह्यौ जाय है ॥ १७ ॥

सूक्ष्मध्यानविधिः ।

तेजोध्यानं श्रुतं चंड सूक्ष्मध्यानं वदाम्यहम् ॥
बहुभाग्यवशाद्यस्य कुंडली जागृता भवेत् ॥ १८ ॥

अर्थ—हे चंडकापालि ! तेजोध्यान तौ सुन्यो अब सूक्ष्मध्यान कहों हों जाकी कुंडलिनी जाग उठै है वह बडो भागवान है ॥ १८ ॥

आत्मनः सह योगेन नेत्ररंध्राद्विनिर्गता ॥
विहरेद्राजमार्गे च चंचलत्वान्न दृश्यते ॥ १९ ॥

अर्थ—तब वो आंखनिके छेदनसों निकसकें आत्मासों मिलकें राजमार्गमें विहार करवे लगै है और ऐसी चंचल हो जाय है कि काहूकों नहीं दीखै है ॥ १९ ॥

शांभवीमुद्रया योगी ध्यानयोगेन सिध्यति ॥
सूक्ष्मध्यानमिदं गोप्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥ २० ॥

अर्थ—तब योगी शांभवीमुद्राके योगसों ध्यान करै तौ सिद्धि हो जाय है यह सूक्ष्मध्यान बडोही गुप्त है और देवनानकोंभी दुर्लभ है ॥ २० ॥

स्थूलध्यानाच्छतगुणं तेजोध्यानं प्रचक्षते ॥
तेजोध्यानाल्लक्षगुणं सूक्ष्मध्यानं परात्परम् ॥ २१ ॥

अर्थ—स्थूलध्यानसों सौगुनौ तेजोध्यान कह्यो जाय है और तेजोध्यानसों लाखगुनों सूक्ष्मध्यान है तथा वह ध्यान दूरसोंभी दूर है ॥ २१ ॥

इति ते कथितं चंड ध्यानयोगं सुदुर्लभम् ॥
आत्मा साक्षाद्भवेद्यस्मात्तस्माद्ध्यानं विशिष्यते २२
इति श्रीघेरंडसंहितायां घेरंडचंडकापालिसंवादे
घटस्थयोगे ध्यानयोगो नाम षष्ठोपदेशः ॥ ६ ॥

अर्थ—हे चंडकापालि ! मैंने तोसों यह सुदुर्लभ ध्यानयोग कह्यौ जासों आत्मा प्रकट हो जाय है याहीसों ध्यानयोग सबसों जादा है ॥ २२ ॥

इति श्रीघेरंडसंहितायां श्रीमथुरादक्षगोत्रोद्भवचातुर्वेदिशर्म-
श्री १०५ बडेचौबेश्रीकल्याणचंद्रात्मजभिषग्राधाचं-
दविरचितायां व्रजभाषाभाष्यनामव्रजभाषाटीकायां
ध्यानयोगो नाम षष्ठोपदेशः ॥ ६ ॥

सप्तमोपदेशः ७।

अथ समाधियोगविधिः।

समाधिं च परं योगं बहुभाग्येन लभ्यते ॥
गुरोः कृपाप्रसादेन प्राप्यते गुरुभक्तितः ॥ १ ॥

अर्थ--समाधियोगसों परे कोऊ योग है नहीं और वाकों बहुत भाग्यतासों पावे है और गुरुकी कृपा तथा भक्तिसों तथा बडे अनुग्रहसों मिलै है ॥ १ ॥

विद्याप्रतीतिः स्वगुरुप्रतीतिरात्मप्रतीतिर्मनसः प्रबोधः॥
दिनेदिनेयस्य भवेत्स योगी सुशोभनाभ्यासमुपैतिसद्यः २

अर्थ--जाकों विद्यामें (योगमें) विश्वास होइ और अपने

गुरुकी प्रतीत राखै और आत्मामें विश्वास राखै और मनको बांधकर राखै है वोही योगी रोज सुंदर अभ्यासको प्राप्त होइ ॥ २ ॥

घटाद्भिन्नं मनः कृत्वा ऐक्यं कृत्वा परात्मनि ॥
समाधिं तद्विजानीयान्मुक्तसंज्ञो दशादिभिः ॥ ३ ॥

अर्थ--अंगसों अलग मन करकें (सबसों अलग) जो परमात्मा है तामें एकाग्र मन लगावे वाकों समाधि जाननी यह दश (अवस्थादि) छूट जाय अर्थात् मुक्ति हो जाय है ॥ ३ ॥

अहं ब्रह्म न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ॥
सच्चिदानंदरूपोऽहं नित्यमुक्तः स्वभाववान् ॥ ४ ॥

अर्थ--तब ऐसो विचारे कि मानों मैंही ब्रह्म हों दूसरो कोई नहीं है शोक जो होयो करे है उनका भागी मैं नहीं हूं तासों मैं निश्चय ब्रह्मसों तीनों कालमें एकसम रहूं तथा सांच झूठको जानों हूं चैतन्य आनंदमय सबसों अलग अपनें भावसों मुक्त हूं ॥ ४ ॥

अथ समाधिभेदाः ।

शांभव्या चैव खेचर्य्या भ्रामर्य्या योनिमुद्रया ॥
ध्यानं नादं रसानंदं लयसिद्धिश्चतुर्विधा ॥ ५ ॥
पंचधा भक्तियोगेन मनोमूर्च्छा च षड्विधा ॥
षड्विधोयं राजयोगः प्रत्येकमवधारय ॥ ६ ॥

अर्थ--अब समाधियोगके भेद कहे हैं । ध्यानयोग समाधिमें शांभवीमुद्रा और (नादयोग समाधिमें खेचरीमुद्रा) और

रसानंदयोग समाधिमें भ्रामरीमुद्रा लयसिद्धियोग समाधिमें योनिमुद्रा भक्तियोगसमाधिमें यह उपरोक्त मुद्रानसों धारण करनी याही तरह राजयोगसमाधि सबरी धारण करनी ॥ ५ ॥ ६

अथ ध्यानयोगसमाधिः ।

शांभवीमुद्रिकां कृत्वा आत्मप्रत्यक्षमानयेत् ॥
बिंदुब्रह्म सकृद्दृष्ट्वा मनस्तत्र नियोजयेत् ॥ ७ ॥

अर्थ—पहले शांभवीमुद्रा (धारण) करके तब आत्माको प्रकट कर आनो फिर बिंदुमय ब्रह्मको एकदफे दर्शन कर वहीं मनको ठहराय देवै ॥ ७ ॥

खमध्ये कुरु चात्मानं आत्ममध्ये च खं कुरु ॥
आत्मानं खमयं दृष्ट्वा न किंचिदपि बाधते ॥
सदानंदमयो भूत्वा समाधिस्थो भवेन्नरः ॥ ८ ॥

अर्थ—फिर माथेमें रहवेवारो ब्रह्मलोकमय आकाशके बीचमें अपने जीवात्माको बैठारै और याही तरह अपने जीवात्माके बीचमें माथौ धरै ब्रह्मलोकमय आकाशकोभी स्थापन करै पीछे अपने जीवात्माको आकाशमें देखके वह पुरुष काहू चीजमें नेकहू न बँधे और सदा आनंदमय होयके समाधिमें बैठ जाय याकों ध्यानयोगसमाधि कहे हैं ॥ ८ ॥

अथ नादयोगसमाधिविधिः ।

साधनात्खेचरी मुद्रा रसनोर्ध्वं गता सदा ॥
तदा समाधिसिद्धिः स्याद्धित्वा साधारणक्रियाम् ९ ॥

अर्थ—खेचरीमुद्राकों साधके जीभकों ऊपरकी ओर जाय-

वेचारी करे अर्थात् तलुआके गड्ढामें अमृतकूप जो है तामें जीभ मिलायकें तब समाधिसिद्धि हो जाय है और (सब छोड) साधारण क्रिया (याकों नादकों) साधै ॥ ९ ॥

अथ रसानंदसमाधिविधिः ।

अनिलं मंदवेगेन भ्रामरीकुंभकं चरेत् ॥
मंदं विरेचयेद्वायुं भृंगनादं ततो भवेत् ॥ १० ॥

अर्थ—भ्रामरीनामक कुंभककों साध करकें धीरे धीरे वायुकों अतिमंदतासों निकार देवै याके साधवेसो देहके भीतर भौंराकी आवाज पैदा करै है ॥ १० ॥

अंतःस्थं भ्रामरीनादं श्रुत्वा तत्र मनो नयेत् ॥
समाधिर्जायते तत्र आनंदः सोहमित्यतः ॥ ११ ॥

अर्थ—तब वहांहीं अपने मनकों लगाय देवे जहां वा अंतर देहमें भौंरीनाद सुने तहां तो समाधि मिले है और वा समयके आनंदसों (सोहं) वही ब्रह्म मैं हों. यह ज्ञान ताकों नादयोग समाधि कहते हैं ॥ ११ ॥

अथ लयसिद्धिसमाधिविधिः ।

योनिमुद्रां समासाद्य स्वयं शक्तिमयो भवेत् ॥
सुशृंगाररसेनैव विहरेत्परमात्मनि ॥ १२ ॥
आनंदमयः संभूत्वा ऐक्यं ब्रह्माणि संभवेत् ॥
अहं ब्रह्मेति वाऽद्वैतं समाधिस्तेन जायते ॥ १३ ॥

अर्थ—पहले योनिमुद्राकों साधकें अपनकों शक्तिमय मानके अर्थात् अपनेको स्त्री माने पीछें मनही मनमें ऐसो माने पुरुष-

रूप परमात्माके संग नारीरूप आप शृंगाररससंबंधी विहार कर रहे हैं वाके पीछे विहाररससों पैदा वा रसमें मग्न होके परब्रह्म सहित भावसों ओंकारमें मिल्यौ भयो हों याही योगके द्वारा मैंहू ब्रह्म हों दूसरो नहीं है ऐसे जो संचार होत है इसीको समाधिलययोग कहे हैं ॥ १२ ॥ १३ ॥

अथ भक्तियोगसमाधिविधिः ।

स्वकीयहृदये ध्यायेदिष्टदेवस्वरूपकम् ॥
चिंतयेद्भक्तियोगेन परमाह्लादपूर्वकम् ॥ १४ ॥
आनंदाश्रुपुलकेन दशाभावः प्रजायते ॥
समाधिः संभवेत्तेन संभवेच्च मनोन्मनी ॥ १५ ॥

अर्थ-अपने हृदयमें इष्टदेवके रूपकौ ध्यान करै और चिंतन भक्तियोगसो तथा आनंदपूर्वक और आनंदके असुआ वहें और रोमांच खडे हो जाँय तथा बेचेत हो जाय तथा मन एकाग्र हो जाय ताको समाधियोग कहे हैं ॥ १४ ॥ १५ ॥

अथ राजयोगसमाधिविधिः ।

मनोमूर्च्छां समासाद्य मन आत्मनि योजयेत् ॥
परमात्मनः समायोगात् समाधिं समवाप्नुयात् ॥ १६ ॥

अर्थ-पहले मनोमूर्च्छानामक कुंभकको साधके मनको परमात्मामें मिलाय देवे और परमात्माके संयोगसो समाधिकी प्राप्ति हो जाय है ॥ १६ ॥

समाधियोगफलम् ।

इति ते कथितं चंड समाधि मुक्तिलक्षणम् ॥

राजयोगः समाधिः स्यादेकात्मन्येव साधनम् ॥
उन्मनी सहजावस्था सर्वे चैकात्मवाचकाः ॥ १७ ॥

अर्थ—इति शब्दविषय संपूर्ण ताको बोधक है हे चंडकापालि ! मैंने तोसों समाधियोगको कह्यौ जो मुक्तको रूप है योग समाधि राजयोग और उन्मनी तथा सहजावस्थामें सर्वयोगनमें एकात्मा हो साधन करे ॥ १७ ॥

जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके ॥
ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥ १८ ॥

अर्थ—जलरूपहू विष्णु है पृथ्वीरूपहू विष्णु है पहाडको माथोहू विष्णु है अग्निमाल (तेजपुंज) हू विष्णु है और सबरो जगत् विष्णुमय है ॥ १८ ॥

भूचराः खेचराश्चामी यावन्तो जीवजंतवः ॥
वृक्षगुल्मलतावल्लीतृणाद्या वारिपर्वताः ॥
सर्वं ब्रह्म विजानीयात् सर्वं पश्यति चात्मनि ॥ १९ ॥

अर्थ—धरतीमें विचरवेवारे (जीव) आकाशगामी (विचरवेवारे) और सबरेही जीवजंतु हैं तथा पेड (गुल्म जातके वृक्ष) वेल लता और घास आदि और पानी और पर्वत इन सबको ब्रह्म जाननों और सबहीकों अपने जीवात्मामें देखनों चाहिये ॥ १९ ॥

आत्माघटस्थचैतन्यमद्वैतं शाश्वतं परम् ॥
घटादिभिन्नतो ज्ञात्वा वीतरागो विवासनः ॥ २० ॥

अर्थ—या अंगमें रहवेवारो चैतन्य अद्वितीय (अर्थात् याके

समान दूसरी नहीं है) सर्वमय नित्य विराजमान नाशरहित ताकों अंगसों अलग मानवेसों बंधननसों मुक्त और वासना-रहित होइ है ॥ २० ॥

एवं विधिः समाधिः स्यात् सर्वसंकल्पवर्जितः ॥
स्वदेहे पुत्रदारादिबांधवेषु धनादिषु ॥
सर्वेषु निर्ममो भूत्वा समाधिं समवाप्नुयात् ॥ २१॥

अर्थ-ऐसी विधिसों समाधिमें सबरे संकल्पनकों छोडकें अपनी देह बेटा लुगाई आदि भाई तथा धन इन सबसों ममता छोडकर समाधिकों पावै है ॥ २१ ॥

तत्त्वं लयामृतं गोप्यं शिवोक्तं विविधानि च ॥
वाचां संक्षेपमादाय कथितं मुक्तिलक्षणम् ॥ २२ ॥

अर्थ-यह गोप्य (गुप्त) तत्वलयामृत विधिसहित महादेवनें कह्यौ बहुत तरह मैंने तासो (सार) संक्षेप (विस्ताररहित) लेकर कह्यौ सो मुक्तिको रूप है ॥ २२ ॥

इति ते कथितं चंड समाधिर्दुर्लभः परः ॥
यज्ज्ञात्वा न पुनर्जन्म जायते भूमिमंडले ॥ २३ ॥

इति श्रीघेरंडसंहितायां घेरंडयोगेश्वरनृपचण्डका-पालिसंवादे समाधियोगो नाम सप्तमोपदेशः ॥ ७ ॥

अर्थ-इति शब्द ग्रंथ संपूर्णताकौ सूचक है। हे चंडकापालि ! मैंने तोसों दुर्लभ (मिले नहीं) समाधि (योग) सो परें सो कह्यौ याके ज्ञान (जानवे) सो फिर धरतीमें जन्म नहीं होइ है ॥ २३ ॥

इति श्रीघेरंडसंहितायां श्रीमथुरास्थदक्षगोत्रोद्भवचतुर्वेदिशर्मश्री५कल्याणचंद्रात्मजराधाचंद्रभिषग्विरचिते व्रजभाष्यनामव्रजभाषानुवादसहितः समाधियोगो नाम सप्तमोपदेशः ॥ ७ ॥

अष्टमोपदेशः ८ ।

अथ परिशिष्टग्रंथः ।

प्रातः स्मरामि यदुनंदनकृष्णचंद्रं प्रातर्भजामि रघुनंदनरामचंद्रम् ॥ प्रातर्नमामि तेजोमयसूर्यचंद्रं प्रातः स्मरामि जगदेककृपाकरत्वम् ॥ १ ॥ प्रातः स्मरामि गणनायकमेव मुख्यं प्रातर्नमामि गौरीपतिमम्बुजाक्षम् ॥ प्रातर्भजामि सुखदं जगदादिहेतुं प्रातः स्मरामि हरिमीशमजं दयालुम् ॥ २ ॥ प्रातः स्मरामि गोपालनतत्परं वै प्रातर्नमामि गोपीसुतनन्दलालम् ॥ प्रातर्भजामि हरिदासिविहारिबालं प्रातःस्मरामि राधादियुतं हि चंद्रम् ॥ ३ ॥

इति श्रीघेरंडसंहितायां सर्वयोगसारराधाचंद्रशर्मकृतनवीनश्लोकवर्णनो नामाष्टमोपदेशः ॥ ८ ॥